(१४) स्वामीजी और अद्भुत वचन-सिद्धि के प्रसंग; (१५) उपाध्याय रूपमें स्वामीजी; (१६) सत्य के पुजारी और निर्भीक नेता रूप में स्वामीजी।

इस जीवन चरित्र के तैयार करने में हमें श्री पन्नालालजी भसाली द्वारा संग्रहीत "स्वामीजी के दृष्टान्तों" से बड़ा सहारा मिला। इसके लिए हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं।

यदि यह जीवन-चरित्र पाठकों के जीवन निर्माण और स्वामीजी के जीवन-सम्बन्ध में जो गलत फहमियां फैलायी जा रही हैं, उन्हें दूर करने में जरा भी सहायक हुआ, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा। वैसे तो यह जीवन चरित्र स्वान्तः सुखाय ही लिखा गया है और उसे लिखते समय अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति हुई है – आत्म-संतोष की बात तो कर ही नहीं सकता, क्योंकि स्वामीजी की जीवनी, जैसा कि मैं ऊपर लिख आया हूं, वर्षों के सतत और एकान्त स्वाध्याय की आवश्यकता रखती है, फिर भी यह जीवन-चरित्र भावी लेखकों के लिए कुछ हद तक सहायक होगा ऐसा आशा है।

[illegible]

खण्ड : २

जीवन-विश्लेषण

१—स्वामीजी के जीवन की पृष्ठभूमिका : ८३
[आरोप और उसका हेतु—संस्थापक नहीं उद्धारक—अन्तर-भावना के स्फुट चित्र—यह आकर्षण क्यों ?—अन्तिम समय के दो स्फुट चित्र—जीवन का ध्रुवपद—धर्म-अधर्म का नीर-क्षीर विवेक—जिन-आज्ञा की महानता]
२—एक अमाप्य महापुरुष : १०४
३—एक महान् आदर्शवादी संत : १०८
४—एक महान् क्रांतिकारी युग-पुरुष : १२३
[यह जमाना—पुनर्निर्माण की रूपरेखा—शिथिलाचार की आलोचना—भावकों के प्रति भी]
५—वैराग्य मूर्ति : १५४
[एक संगम—वैराग्य भाव की कथाएँ]
६ साकारी तत्वज्ञानी : १५८
[नव पदार्थ का वैज्ञानिक विश्लेषण—पदार्थ—तत्वज्ञान के निर्झर—स्वर्ग-नर्क कौन ले जाता है ?—घर की परख—विधवा कैसे ?—सुख-दुःख का कारण—लाभ-अलाभ का कारण पुराने काल में देवालय क्यों ?—कूर्मापुत्र के केवली [illegible] भावक के भव एक या दो ?—पुण्य बंध कैसे होता [illegible]—नव मित्र या—नदी उतरना वगैरह फल चटाना—एक ही [illegible] में [illegible]—ज्ञान आत्मा में साधु कौन ?—[illegible]—[illegible] देने से [illegible]—देने में धर्म-पाप—[illegible] और वमन—[illegible]—ही और गद्दा—स्थानक कैसे ?
[illegible] १८०
[illegible] और [illegible] और [illegible]
—[illegible] १९१

अनुक्रमणिका

खण्ड : १

जीवन-कथा

पृष्ठ

१—गृह-जीवन और दीक्षा : ३

[जन्म—यौवन—विवाह—वैराग्य और दीक्षा]

२—दीक्षा के बाद ८ वर्ष : ११

[विद्वान् शिष्य—राजनगर का चौमासा—एक आत्मवञ्चना—अनुताप और प्रतिज्ञा—मौन स्वाध्याय—वापिस आचार्य के पास]

३—प्रभु के पथ पर : २०

[सम्बन्ध विच्छेद के बाद—श्रेयस् की ओर—बरलू में महत्त्वपूर्ण चर्चा—वीर गौतम की जोड़ी—तेरापन्थी नामकरण का इतिहास—नव प्रस्थान और प्रथम चातुर्मास—वे तूफानी दिन और मेरु की स्थिरता]

४—प्रचार कार्य ३५

[मौन साधक—उपदेशक आचार्य—चतुर्विध संघ]

५—महा प्रस्थान ४२

[अदृष्ट का आभास और अन्तिम उपदेश—आत्म-निरीक्षण और आत्म-शोधन—अनशन—आजीवन आहार-परित्याग—अन्तिम दिन]

६—जीवन सम्बन्धी खास-खास बातें ५५

[महत्त्वपूर्ण वर्ष—महत्त्वपूर्ण स्थान—आयुष्य का ब्यौरा—मुद्रा और शरीर—जन्म कुण्डली—प्रचार-क्षेत्र—स्वामीजी की कृतियां—रचनाओं का संक्षिप्त परिचय—शिष्य-सम्पदा—स्वामीजी के जीवन-चरित्र की सामग्री]

खण्ड : २

जीवन-विश्लेषण

१—स्वामीजी के जीवन की पृष्ठभूमिका : ८३

[आरोप और उसका हेतु—संस्थापक नहीं उद्धारक—अन्तर-भावना के स्फुट चित्र—यह आकर्षण क्यों ?—अन्तिम समय के दो स्फुट चित्र—जीवन का ध्रुवपद—धर्म-अधर्म का नीर-क्षीर विवेक—जिन-आज्ञा की महानता]

२—एक असामान्य महापुरुष : १०४

३—एक महान् आदर्शवादी संत : १०८

४—एक महान् क्रांतिकारी युग-पुरुष : १२३

[वह जमाना—पुनर्निर्माण की रूपरेखा—शिथिलाचार की आलोचना—श्रावकों के प्रति भी]

५—[illegible] मुनि : १५४

[illegible] एक ध्यान—वैराग्य भाव की कथाएँ]

६—मस्करी [illegible] १५८

[illegible] का दार्शनिक विश्लेषण—[illegible]—तत्त्वज्ञान के [illegible]—स्वर्ग-नर्क [illegible] [illegible]—[illegible] का कारण—[illegible] पुराने [illegible]—[illegible] पुत्र के केवल [illegible]

[illegible]

बचपन में बड़े होशियार थे। उनकी बुद्धि बड़ी कुशाग्र थी और उन्हें मौके की अच्छी पहचान थी।

—यौवन—

बड़े होने पर घर के काम-काज की सार-सम्भाल और देख-रेखमें वे बड़े कुशल निकले। पञ्च-पंचायती के कामों में वे अग्रसर रहते। गाँवमें वे बड़े बुद्धिमान समझे जाते थे और उनकी बड़ी पैठ थी। शुरू से ही वे बड़े दूरदर्शी थे।

संत भीखणजीके गृहस्थ-जीवनमें उपरोक्त गुणों पर प्रकाश डालने वाली अनेक घटनाएँ घटी होंगी परन्तु दुर्भाग्यवश आज हमें उनसे वंचित रह जाना पड़ता है। उनके गृहस्थ-जीवनकी बहुत थोड़ी घटनाओं की ही नोंध हमें मिलती है फिर भी वे उनकी असाधारण तीक्ष्ण बुद्धि और दूरदर्शिता का परिचय देती हैं। हम उनमें से दो-एक घटना यहाँ देते हैं।

एक दफा की बात है कि संत भीखणजी के गाँवमें किसीके घर से गहनों की चोरी हो गई। वहाँ एक अन्धा कुम्हार रहता था। [illegible] था और कहा [illegible] का पता पर पूरा विश्वास [illegible] हो गया। संत भीखणजी [illegible] वह कुम्हार उनके पास पहुँचा और कुछ [illegible] और स्वामीजी से पूछने [illegible] है।" [illegible] श्री भीखणजी को [illegible] का असली [illegible]। [illegible] वह बात जिसमें हुई उसमें अन्धा कुम्हार [illegible] बहुत आदमी इकट्ठे हुए। कुम्हार कुछ देर इधर-उधर के [illegible] करता रहा [illegible] है। [illegible] है।" परन्तु [illegible]

करने का मौका दे दिया। इस पर कुम्हार के लड़के का कहा—"[illegible] है, क्योंकि [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

चल जायगा।" ठाकुर होशियार हो गया और जल्दी-जल्दी चलने लगा। दोनों रास्ता तय कर दिन रहते-रहते घर पहुँचे। स्वामीजी की बुद्धि काम न करती और वे चतुराई से काम न लेते तो शायद दोनों को रास्ते में ही कष्ट से रात काटनी पड़ती।

संत भीखणजीको सामाजिक कुरीतियों से बड़ी चिढ़ थी। एक बार वे ससुराल गए। भोजनके लिए गए तो स्त्रियाँ गालियाँ गाने लगीं- "ओ तो काली धनो ने कावरोजी लाल।" भीखणजीने भोजन करना बंद कर दिया। उनका साला लगड़ा था। इस बातका सहारा लेकर वे विनोद करते हुए बोले : "आप अधे थोड़ेको तो अच्छा बतलाते हैं और अच्छे को बुरा। क्या यह ठीक है?" फिर 'यह मुझे पसन्द नहीं है"—ऐसा कह अपना विरोध दिखाते हुए बिना भोजन किए ही उठ चले। उनके इस तीव्र विरोध का फल जो होने का था वही हुआ।

—विवाह—

भीखणजी का विवाह कब हुआ यह मालूम नहीं परन्तु पता चलता है कि वह छोटी उम्रमें ही कर दिया गया था। उनके एक पुत्री हुई थी। स्वामी जी स्वभाव से ही वैरागी थे। इस प्रकार बाल्यावस्था में ही वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने पर भी उनकी आन्तरिक वैराग्य भावना में फर्क नहीं आया। भोग और विलासमें उन्हें चैन न मिलता और संसार से वे उद्विग्न और खिन्न चित्त रहते थे। उनका गृहस्थ-जीवन बड़ा संयत था। उनकी पत्नी भी उन्हीं की तरह धार्मिक प्रकृति की और बड़ी विनयशील थी। ऐसी पुण्य आत्माएँ कम मिलती हैं।

—वैराग्य और दीक्षा—

संत भीखणजी के माता-पिता गच्छवासी सम्प्रदायके अनुयायी थे। अतः पहले-पहल भीखणजी का इसी सम्प्रदायके साधुओंके पास आना-जाना हुए

हुआ। बादमें इनके यहाँ आना-जाना छोड़ वे पोतियाबंध साधुओंके अनुयायी हुए। इनके प्रति भी उनकी भक्ति विशेष समय तक टिक न सकी और वे स्थानक सम्प्रदाय की एक शाखा विशेष के आचार्य श्री रघुनाथजी की सम्प्रदाय के अनुयायी हुए।

इस तरह भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके संसर्गमें आने से चाहे और कोई लाभ हुआ हो या न हुआ हो परन्तु इतना अवश्य हुआ कि सांसारिक जीवनके प्रति मोरबाईजी की उदासीनता दिन-पर-दिन बढ़ती गई और वह यहाँ तक बढ़ी कि उन्होंने दीक्षा लेनेका विचार दृढ़ कर लिया। इनके साथ उनकी पड़ोसने भी दीक्षा लेनेका विचार कर लिया, और दोनों ब्रह्मचर्यका पालन करने लगे। पूर्व पुण्य प्रकाशमें ब्रह्मचर्य पालन का निश्चय से दोनोंने उठते हुए यौवन की उद्दाम तरंगों पर वैराग्य और संयम की गहरी मुहर लगा दी। प्राप्त भोगों को ठुकरा कर दोनोंने सच्चे त्यागी होनेका परिचय दिया। कहा भी है—

वत्थगन्धमलंकारं इत्थियो सयणाणि य।
अच्छन्दा जे न भुंजन्ति न से चाइ त्ति वुच्चइ॥
जे य कन्ते पिए भोए लद्धे वि पिट्ठिकुव्वइ।
साहीने चयई भोए से हु चाइ त्ति वुच्चई॥

अर्थात्—जो वस्त्र, गन्ध, अलंकार, स्त्री और शयन का परवशतासे सेवन नहीं करता वह त्यागी नहीं है; पर जो कान्त और प्रिय भोगों को भी पीठ दिखा देता है और स्वाधीन भोगोंको भी ठुकरा देता है वही वास्तवमें त्यागी है।

ब्रह्मचर्यके नियमके साथ-साथ एक अन्य नियम भी दोनोंने ग्रहण किया। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक दीक्षा की इच्छा पूरी न होगी तब तक दोनों एकान्तर-एक दिनके बाद एक दिन-उपवास किया करेंगे। इस प्रतिज्ञा

के कुछ अर्से बाद ही श्रीमद् भीखणजी की पत्नी का स्वर्गवास हो गया। अब वे अकेले ही रह गए। इस वियोगमें उनकी वैराग्य-भावना को और भी उत्तेजना मिली। "काल का क्या भरोसा है? जैसे कुश की नोक पर टिके हुए जल-बिंदु को गिरते देर नहीं लगती वैसे ही यह जीवन कब विलीन हो जाय क्या ठिकाना है? शुभ काममें एक समय का भी प्रमाद करना महंकर भूल है।" भीखणजी रात-दिन इन्हीं विचारों में लीन रहने लगे। लोगोंने उनको फिर विवाह करने के लिए समझाया परन्तु उन्होंने किसी की न सुनी। अच्छे सम्बन्ध मिलते हुए भी उन्होंने सबको ठुकरा दिया और यावज्जीवन ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा कर ली। संत भीखणजी का वैराग्य कितना उत्कट था, यह उपरोक्त घटना से साफ-साफ प्रगट होता है। दीक्षा लेनेके पूर्व उन्होंने अपनी योग्यता को किस प्रकार कसौटी पर कसा था, इसका अनुमान एक अन्य घटना से भी होगा।

जब भीखणजी का दीक्षा लेने का विचार हुआ तो उन्होंने अपनी अन्नमाइश के लिए कैरका औसाया हुआ (कैर उबाल कर जो जल निकाल दिया जाता है) जल लिया। उसे एक ताम्बेके लोटेमें डाल कर उसमें राख मिला उसे बडेल (हथिडयोंकी जट) में रख दिया। बहुत देर बाद जब वह जल निथर गया—स्वच्छ हो गया तो उसे पिया। इससे उनको बड़ा कष्ट हुआ। साधु बनने पर पक्के जल पीनेके नियम को वे निभा सकेंगे या नहीं इसी जाँचके लिए उन्होंने निस्वादसे-निस्वाद पक्के जल को लेकर अपनी अन्नमाइश की। *दीक्षा लेनेके कोई ४३ वर्ष बाद संत भीखणजीने हेमराजजी स्वामीको* अपने जीवन की इस घटनाका जिक्र किया और बोले "साधु होनेके बाद आज तक वैसा निरस पानी पीनेका काम नहीं पड़ा।"

इस तरह अपनेको अनेक तरहसे जा-तरास कर वे भीतर ही भीतर मुनि-जीवनके लिए सम्पूर्ण रूपसे तैयार हो गए और फिर दीक्षा लेनेका विचार

ओंके सम्राट, त्यागियों के मुकुटमणी तथा तत्वज्ञान और अखण्ड आत्म-ज्योतिके धारक महापुरुष अवश्य निकले।

दीपांबाई ने आखिर दीक्षाकी अनुमति दे दी। अपने वैधव्य जीवन के एक मात्र सहारे और दुलारे पुत्रको इस प्रकार दीक्षा की अनुमति देकर दीपांबाईने जिस साहस और धर्मप्रेम की भावनाका परिचय दिया वह एक महान् माताके अनुरूप ही था। उनकी यह न्यौछावर दुनिया को एक कितनी बड़ी देन थी इसका आभास पाठकों को आगे जाकर होगा।

दीक्षा लेते समय संत भीखणजीने करीब १०००) रुपये अपनी माताके पास छोड़े।

संत भीखणजीकी दीक्षा बगड़ी शहर में हुई। आचार्य रुघनाथजीने खुद अपने हाथसे उन्हें दीक्षा दी। उस समय संत भीखणजी की अवस्था २५ वर्ष की थी। इस तरह २५ वर्ष का यह तेजस्वी युवक अद्भुत वैराग्य भावनाओंसे उच्छवासित हो त्याग मार्ग का बीड़ा उठा निर्धेयसके मार्ग पर अग्रसर हुआ।

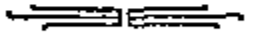

आत्माके उद्धारमें प्रवृत्त होता है। ज्यों-ज्यों शारीरिक वेदनाका वेग बढ़ता है, त्यों-त्यों उसके हृदयकी वृत्तियोंकी अन्तर्मुखता भी बढ़ती जाती है और उसकी आत्मा अधिकाधिक सत्यके दर्शनके लिये दौड़ने लगती है। सांसारिक प्राणीकी दृष्टि जहां मिथ्या आत्म-सन्मान, बाह्य-दम्भ और प्रतिष्ठाकी खोज करती है वहां मुमुक्षुकी दृष्टि अन्तरकी ओर झांकती है और अपने किये हुए बुरे कार्योंका पश्चाताप कर आत्म-शुद्धि करती है। मुमुक्षु कभी मानापमानकी धारामें बह भी जाता है तो भी उसे तैर कर बाहर आनेमें देर नहीं लगती। सन्त भीखणजीके विषयमें भी ऐसा ही हुआ। ये आन्तरिक मुमुक्षु थे और इसीलिए अपनी भूलका इस तरह प्रमार्जन कर सके। सन्त भीखणजीको अब सत्यके दर्शन हो चुके थे फिर भी वे अधीर न हुए। आत्मार्थी देख-देख कर पैर धरता है। वह अधीरता को महान् पाप समझता है। वह अपने विचारोंको एक बार दो बार नहीं परन्तु बार-बार सत्य की कसौटी पर कसता है और जब जरा भी सन्देह नहीं रह जाता तब जो अनुभवमें आता है उसे साफ-साफ प्रगट करता है। स्वामीजीने भी अन्तिम निर्णयके लिए इसी मार्गका अवलम्बन किया। उन्होंने धीर चित्त से दो बार सूत्रों का सूक्ष्म अध्ययन किया। गुरु की पक्ष ले झूठ को सत्य प्रमाणित करना जहां महान् दुःख का कारण होता वहां गुरुके प्रति भी अधीरज वश कोई अन्याय कर बैठना दुर्गति का कारण था। इस दुधारी तलवार से बचने के लिए मौन स्वाध्याय और आगम दोहन ही एक मात्र उपाय था। इस दोहन से उन्हें इस बात का पूरा-पूरा भरोसा हो गया कि श्रावकों का पक्ष सत्य है और साधु लोग वास्तवमें ही जिन-आज्ञा का तिरोभाव कर रहे हैं। अब अपनी भूल को सुधारना भी उन्होंने जरूरी समझा और निर्भिकता से अपना निर्णय देते हुए बोले—"श्रावको! तुमलोग सच्चे हो। हमलोग झूठे हैं। गुरुसे मिलकर हमलोग शुद्ध मार्ग को ग्रहण करेंगे।" संत भीखणजी की इस खरी बातको सुनकर श्रावक

अग्रसर हुए। रास्ते में छोटे-छोटे गाँव पड़ते थे। इसलिये साधुओंके दो दल कर दिये। एक दलमें साधु वीरभानजी थे। श्रीमद् मोरखजी ने वीरभानजी को समझा दिया था कि यदि वे रत्नाजी के पास पहले पहुँचे तो वहाँ इस विषय को कोई चर्चा न करें। क्योंकि यदि पहले ही बात सुनकर पक्षपात हो गया तो समझानेमें विशेष कठिनाई होगी। उन्होंने कहा—"मैं खुद पहुँच कर सब बातें विनय पूर्वक उनके सामने रखूँगा और उन्हें सत्य मार्ग पर लाने की चेष्टा करूँगा।"

दोनों दलों से साधु वीरभानजी ही पहिले सोजत पहुँचे। उस समय आचार्य रत्नाजी वहीं थे। श्री वीरभानजी ने वन्दना की। आचार्य रत्नाजी ने पूछा—"भावकों की भ्रान्तियाँ दूर हुई या नहीं?" साधु वीरभानजी ने उत्तर दिया—"श्रावकोंकी कोई शंका होती तब न दूर होती! उन्होंने तो सिद्धान्तों का सच्चा भेद पा लिया है। हमलोग आधाकर्मी आहार करते हैं। एक ही जगह से रोज-रोज गोचरी करते हैं। वस्त्र पात्रादि उपकरणों के निश्चित परिमाण का उल्लंघन करते हैं। अग्निकायकी आज्ञा लिये ही रोटी सेकते हैं, हरे बिनी को प्रज्वलित कर लेते हैं। इस तरह अनेक दोषों का हमलोग सेवन करते हैं और केवल सेवन ही नहीं, परन्तु उनको उचित भी ठहराते हैं। श्रावक सच्चे ही कहते हैं, उनकी श्रद्धाएँ मिथ्या नहीं हैं।" यह सुनकर आचार्य रत्नाजी सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने कहा—"यह क्या कहते हो?" वीरभानजी ने कहा—"मैं सच ही कहता हूँ। देखो जो कहा वह सच है। यही कारण है श्रीमद्जी के आनेसे ही अपूज्य होने।" इस तरह चौथ न होने से वीरभानजी ने सारी बात कह डाली। श्रीमद् मोरखजी इस समय के बाद पहुँचे। आते ही उन्होंने आचार्य रत्नाजी का शास्त्रार्थ किया। परन्तु उन्होंने उस में कोई और न शास्त्रार्थ स्वीकार किया। यह देख कर श्रीमद् मोरखजी सच्चे पंथ से हो कर

वीरभाणजी ने पहले ही सारी बात कह दी है। श्रीमद् भीखणजी ने इस उदासीनता का कारण पूछा, तब आचार्य महाराज ने उत्तर दिया—"तुम्हारे मनमें शंकाएँ पड़ गई हैं। तुम्हारा और हमारा दिल नहीं मिल सकता। आज से हमारा और तुम्हारा आहार भी एक साथ नहीं होगा।" श्रीमद् भीखणजी ने मन में विचार किया—"इसमें और इनमें दोनों में ही समकित नहीं है। परन्तु अभी बहस करना निरर्थक है। शायद ये सोचते हों कि मैं हर हालत में इनसे अलग होना चाहता हूँ और इन्हें गुरु नहीं मानना चाहता। इसलिये उचित है कि मैं उनकी इस धारणा को दूर कर उनके हृदय में विश्वास उत्पन्न करूँ कि मेरे विचार ऐसे नहीं हैं। मुझे शिष्य रूप में रहना अभीष्ट है, बशर्ते कि सन्मार्ग के अनुसरण में कोई रुकावट न हो। यह सोच कर वे बोले—"यदि व्यर्थ ही मेरे मन में शंकाएँ पड़ गई हों तो उन्हें दूर कीजिए। मुझे प्रायश्चित द्वारा शुद्ध कर भीतर लीजिये।" इस तरह उन्होंने आचार्य महाराज की व्यर्थ आशंका को दूर कर सहभोजी बन, वार्तालाप करने का सुअवसर प्राप्त किया।

इसके बाद सुअवसर देखकर श्रीमद् भीखणजी ने आचार्य महाराजके साथ विनम्रता पूर्वक आलोचना शुरू की। उनका कहना था—"हमलोगोंने आत्म-कल्याण के लिये ही घरबार छोड़ा है अत: ढोंग छोड़कर सच्चे मार्ग को ग्रहण करना चाहिये। हमें शास्त्रीय वचनों को प्रमाण मानकर मिथ्या मान्यतायें न रखनी चाहिये। पूजा-प्रशंसा तो कई बार मिल चुकी है, पर सच्चा मार्ग मिलना बहुत ही कठिन है। अत: सच्चे मार्गकी तुलनामें इन बातों को नगण्य समझना चाहिये। शुद्ध जैन मार्गको अंगीकार करने पर आप ही हमारे पूज्य रहेंगे। आप पुण्य-पाप का मेल मानते हैं। एक ही काममें पुण्य और पाप दोनों समझते हैं—यह ठीक नहीं है। अशुभ योगसे पापका बन्ध होता है और शुभ योगसे पुण्य का संचार होता है, परन्तु ऐसा कौन सा योग है जिससे

एक ही साथ दुःख और पाप दोनों का संचार होता हो ! अतः आप अपने पक्ष को छोड़कर सच्चे मार्ग को ग्रहण कीजिये। सूत्रों के वचनों पर श्रद्धा रखें। जिन-आज्ञा के बाहर कोई धर्म नहीं है। आभ्यन्तर आँखें खोल कर और जिन-प्रवचनों पर ध्यान देकर पकड़ी हुई टेक को छोड़ देना चाहिये। न शुद्ध श्रद्धा ही हमारे हाथ आई है, न शुद्ध आचार। हम लोगों ने आत्मा के निस्तार के लिये ही घर छोड़ा है। इसलिये आपको बार-बार निवेदन करता हूँ और अन्य कोई कामना नहीं है। सब को एक दिन परभव में जाना है। श्रद्धा का प्राप्त होना दुर्लभ है। जिसके बिना आत्मा का कल्याण नहीं। अतः पक्षपात को छोड़ दें; सूत्रों की बात मानने पर आपही हमारे नाथ हैं।" परन्तु आचार्य रघुनाथजी पर भीखणजी की इन बातों का कोई असर नहीं पड़ा उल्टे वे अधिक क्रुद्ध हो उठे। संत भीखणजी ने सोचा अब [illegible] करने से काम नहीं होगा [illegible] को दूर करने के लिये धैर्य से काम लेना होगा [illegible] उन्होंने प्रार्थना की कि इस बार चातुर्मास एक साथ किया [illegible] परन्तु आचार्य [illegible] नहीं हुए।

[illegible]

वीरभाणजी ने पहले ही सारी बात कह दी है। श्रीमद् भीखणजी ने इस उदासीनता का कारण पूछा, तब आचार्य महाराज ने उत्तर दिया—"तुम्हारे मनमें शंकाएँ पड़ गई हैं। तुम्हारा और हमारा दिल नहीं मिल सकता। आज से हमारा और तुम्हारा आहार भी एक साथ नहीं होगा।" श्रीमद् भीखणजी ने मन में विचार किया—"हममें और इनमें दोनों में ही समकित नहीं है। परन्तु अभी बहस करना निरर्थक है। शायद ये सोचते हों कि मैं हर हालत में इनसे अलग होना चाहता हूँ और इन्हें गुरु नहीं मानना चाहता। इसलिये उचित है कि मैं उनकी इस धारणा को दूर कर उनके हृदय में विश्वास उत्पन्न करूँ कि मेरा विचार वैसे नहीं हैं। मुझे शिष्य रूप में रहना अभीष्ट है, जिससे कि सन्मार्ग के अनुसरण में कोई रुकावट न हो। यह सोच कर वे बोले—"यदि व्यर्थ ही मेरे मन में शंकाएं पड़ गई हों तो उन्हें दूर कीजिए। मुझे प्रायश्चित द्वारा शुद्ध कर भीतर लीजिये।" इस तरह उन्होंने आचार्य महाराज की व्यर्थ आशंका को दूर कर सहभोजी बन वार्तालाप करने का सुअवसर प्राप्त किया।

इसके बाद सुअवसर पाकर श्रीमद् भीखणजी ने आचार्य महाराजके साथ [illegible] आलोचन शुरू की उनका कहना था—"हमलोगोंने आत्म-[illegible] के लिये ही [illegible] अतः इस [illegible] मार्ग को ग्रहण करना चाहिए हमें शास्त्रीय वचनों को प्रमाण मानकर मिथ्या मान्यताएँ न रखनी चाहिए [illegible] है, वह सच्चा मार्ग [illegible] है अतः सच्चे मार्ग के अनुसरण में इन बातों को अवश्य समझना चाहिए। यदि हम सच्चे मार्ग का अनुसरण करने पर आरूढ़ हो हमारे गुरु [illegible] को ठीक मानते हैं वह ही आपमें गुरु और चेले दोनों समझते हैं—यह ठीक नहीं है। अशुभ कर्मसे चेलेका जन्म होता है और शुभ योगसे गुरुका समागम होता है परन्तु क्या कोई ऐसा गुरु है जिसने

[illegible] हो सकता है। अब हम अपनी दृष्टि को दोषरहित बनाने की ओर ध्यान दें। भूलों के बचने का यही [illegible] है। जिज्ञासा के सहारे ही धर्म नहीं है। आत्मबल और मोक्ष का [illegible] और जिन्हें हम पकड़े हुए हैं उन्हें छोड़ देना चाहिये। न तो मन को [illegible] है, न तो आदत। इन दोनों के बंधन के निवारण के लिये ही यह दौड़ है। इसलिये अपनी दृष्टि को [illegible] और कुछ नहीं कहना चाहता हूँ। मन को तो हम फिर पीछे से उठाएँगे। अभी तो हमें [illegible] है। जिसने जिस आत्मा का [illegible] को देखा है; भूलों को [illegible] है।" परन्तु अनेक [illegible] को [illegible] को इस बात का कोई [illegible] था। इसके अतिरिक्त [illegible] है। अंत में [illegible] ने सोचा कि [illegible] करने से काम नहीं होगा। फिर तो [illegible] के लिये [illegible] से काम लेना होगा। सोचा तो यह कि फिर [illegible] से कि इस बार [illegible] पूरा [illegible] फिर लिखने कि [illegible] विशेष लिखा जा सके। परन्तु [illegible] [illegible] लेने के लिये [illegible] हुए।

इसके बाद अनेक [illegible] आई है कि [illegible] से लिये और फिर [illegible] को [illegible] पर [illegible] का अनुरोध किया। परन्तु [illegible] पर [illegible]। अब [illegible] से [illegible] होकर [illegible] कि [illegible] [illegible] लिख सकूँ। अब [illegible] सोचा कि अब [illegible] को [illegible] [illegible]। यह [illegible] [illegible] से [illegible] से [illegible]

[illegible]

[illegible]

—वीर-गोवन की जोड़ी—

इस समय तक १३ श्रावक भी उनके अनुयायी हो गए। १३ श्रावकोंमें ५ अर्जुन सुवर्णकारके सम्प्रदायके, ६ दमनदी और २ अन्य सम्प्रदायके थे।

उस समय साधु स्थित स्थानोंमें रहते थे। इन स्थित स्थानोंको 'सत्र' कहा जाता था और वे साधुओंके ठहरनेके लिये ही बनाए हुए होते थे। ग्राम मुद्गर शैल उद्यान और भगवान महावीर सकटालय होने पर भी वहाँ जैन मुनि निरन्तर उतरते रहे जैन मुनियोंके लिए स्थित स्थानोंमें ठहरने का ही विधान था। स्थित स्थानोंमें उतरना जैन धर्ममें अनाचार—शिथिलाचार माना गया है और आचारी-दोषरूप देखा गया है। अतः सब श्रमणोंने इन स्थानों में उतरनेके घोर विरोधी थे। अर्जुन सम्प्रदाय और उनके शिष्योंमें एक बड़ा अन्तर यह भी था। चूँकि मंख मंखलि और उनके सभी-अपने साधुओंने स्थानों का बहिष्कार कर दिया था अतः उनके अनुयायी श्रावकोंने भी सकारित और धर्म-क्रियाओंके लिये स्थानक बना दिए।

एक दिन बजारमें खुले हुएमें बैठे श्रावक सामायिक और पौषध कर रहे थे। उस दिन उस स्थानके बेचने के लिये फेरीवाले मिट्टीके बर्तन लेकर निकले हुए। बजारके बीचमें श्रावकोंको सामायिक पौषध करते देख उन्हें आश्चर्य हुआ। कौतूहल वश उन्होंने श्रावकोंसे कारण पूछा। ज्ञात होने पर श्रावकोंने अर्जुन सम्प्रदायके संत भगवन्तोंके स्थान देनेवाली बात कह कर सुनाई और उन्हें समझाते हुए अपने लिए स्थान साधुओंके लिए विशेष उपयोगी और आवश्यक है यह भी कहा।

बर्तन विक्रेता कहने लगे: "आप भगवन्तोंके कहने जितने साधु हैं और जितने श्रावक हैं" श्रावकोंने उत्तर देते हुए कहा—"१३ साधु हैं और १३ ही श्रावक"। यह सुनकर विक्रेता कहने लगे: "आपके कहने है—

'तेरा' (तेरह) ही साधु हैं और 'तेरा' (तेरह) ही श्रावक। सिंधीजीके पासही एक सेवक जातिका कवि खड़ा था। वह यह सब वार्तालाप बड़ी दिलचस्पीसे सुन रहा था। उसने तुरन्तही एक दोहा बना सुनाया जिसमें संत भीखणजीके मत को १३ साधु व १३ श्रावकोंके विचित्र संयोग के कारण उसने "तेरापन्थी" कहकर सम्बोधित किया।

"साध साधरी गिलो करे
ते तो आप-आपरो मत
सुणज्यो रे बाहर रा लोकां
ए "तेरापन्थी" मत"

उस सेवक कविके मुखसे 'तेरापन्थी' नामकरण सुनकर संत भीखणजीके विरोधी लोगोंने इस शब्दको मजाकके काममें लाना शुरू कर दिया और इस अर्थ संकुचित भावको उठानेके लिये उसे "तेरापन्थी" कहकर सम्बोधित करने लगे।

यही बात संत भीखणजीके कानोंमें भी पड़ी। कवि द्वारा आकस्मिक अवतरित "तेरापन्थी" शब्द उनको बड़ा अर्थ-गौरव पूर्ण मालूम दिया। उनकी अन्तर विचार-धारा को मानो अभिव्यक्ति उन्हें इसी एक शब्द में संगठित मालूम दी। आपकी आश्चर्यकारी प्रत्युत्पन्न बुद्धिने तत्काल ही उन्हें इस शब्दकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की और अपने मन्तव्यके अभिव्यक्तिके लिये इसी अर्थ सूचक शब्दको सदाके लिए अपना लिया। मारवाड़ीमें १३ संख्या "तेरा" कही जाती है और 'तेरा' इस शब्दका अर्थ तुम्हारा भी होता है। इन दोनों अर्थोंको सामने रखकर संत भीखणजीने "तेरापन्थी" शब्दका अर्थ-स्पष्टीकरण इस प्रकार किया —

"हे प्रभु! तेरा ही पन्थ हमें सत्य मार्ग है इसलिये हम तेरापन्थी हैं।

तेरे पन्थमें पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति ये तेरह बोल हैं, हम इन तेरह बोलोंको पूर्ण रूप पालते हैं और उनका पालन करना ही तेरापन्थ है।

केलवेमें श्रीमद् आचार्य भीखणजीको ठहरनेके लिये शीघ्र स्थान न मिला। वहाँ 'अंधेरी ओरी' नामक एक स्थान था। उस स्थानमें हवा और प्रकाशका नाम मात्र का भी प्रवेश न था। इसलिये 'वह अंधेरी ओरी'—काली कोठरी कही जाती थी। चौमासेके लिये स्वामीजीको यही स्थान बताया गया और इसी स्थानमें स्वामीजीने चौमासा किया। यह स्थान भयानक माना जाता था; परन्तु साहसी और निर्भीक आचार्य भीखणजीके पास डर फटकता भी न था। रातमें संत भारीमालजी मात्रा परठनेके लिये बाहर निकले। उस समय एक सर्प आकर उनके पैरोंमें लिपट गया। भारीमालजी को गये हुए कुछ विलम्ब हो जानेसे आचार्य भीखणजी भी बाहर आये। संत भारीमालजी चुपचाप स्थिर खड़े हुए थे। स्वामीजीने इस तरह खड़े रहनेका कारण पूछा तो संत भारीमालजी ने जवाब दिया-"उपर जातिका जीव पैरमें लिपटा हुआ है।" स्वामीजी सर्पको सम्बोधन कर बोले-"हे आर्य! हम लोग साधु हैं। किसीको कष्ट नहीं देते। अगर हमारे इस मकानमें ठहरनेसे तुम्हें कष्ट होता हो तो हम अन्य स्थानमें चले जाय। अन्यथा इस बालक सन्तके पैरोंमें लिपट कर क्यों परिग्रह दे रहे हो?" स्वामीजी के ऐसा कहते ही वह सर्प एक सपाटेसे एक लम्बी लकीर खींचता हुआ वहाँसे चला गया। स्वामीजी सोये तो उन्हें एक दृश्य दिखाई दिया और यह आवाज सुनाई पड़ी—"हे साधु पुरुष! आप लोगोंके यहाँ रहनेमें मुझे जरा भी कष्ट नहीं है। केवल मेरी खींची हुई लकीरको उल्लंघन कर कोई मात्रादि न करें"।

इस घटनाके बाद और कोई अन्य उपसर्ग नहीं हुआ और चौमासा निर्विघ्न समाप्त हुआ।

श्रीमद् आचार्य भीखणजी की वाणी में एक अमृत-रस था। उनकी वाणी सीधी हृदय पर असर करती और कायापलट कर देती। वे हृदय परिवर्तन की नीति के हिमायती थे, और उनकी उपदेश शैली में ऐसा करने की एक अद्भुत आत्मिक शक्ति थी। सर्प को दूर करने के लिए भी उन्होंने अपने आत्मिक बल का ही सहारा लिया। 'साधु

गांव कि धार पैनी थी, पर जीवन और मरण की पार्थ—आध्यात्मिक मर्म समझने वाले के लिए उस पर चलना जरा भी कठिन नहीं था। वे गाँव गाँव धर्म-उपदेश देते हुए विचरने लगे। यह देख कर आचार्य रघुनाथजी के क्रोध का पारा और भी गर्म हो गया। उन्होंने लोगों को अनेक तरह से बहकाना शुरू किया। उनके बहकावे में आकर लोग स्वामीजी को जमीनी और गोशाले की उपमाएं देने लगे। कोई कहता- 'ये निन्हव हैं इनकी संगत मत करना।" कोई कहता—"इनने देव गुरु धर्म को उठा दिया है। ये जीव बचने में अठारह पाप बतलाते हैं।" इस तरह चारों ओर से कटु वचनों के प्रहार होने लगे। कोई प्रश्न करने के बहाने और कोई दर्शन करने के बहाने आकर उनको खरी-खोटी सुना जाता। परन्तु आचार्य भीखणजी क्षमा-शूर थे। वे इन प्रहारों को फूलों की बौछार की तरह झेलते। द्वेष उन्हें छूता भी नहीं। उनके भावों में अत्यन्त मधुरता रहती। समभाव पूर्ण सहनशीलता के वे ज्वलन्त उदाहरण थे।

श्रीमद् आचार्य भीखणजी के कष्टों की इतने ही तक सीमा न थी। उन्हें केवल तीर के समान तीखे वचनों को ही नहीं झेलना पड़ा, पर अन्य अनेक प्रकार के कष्ट भी उन्हें उठाने पड़े। आचार्य रघुनाथजी ने लोगों को यहाँ तक बहका दिया था कि उन्हें ठहरने के लिए कोई स्थान तक नहीं देता। वे जहाँ जाते वहाँ एक विरोध का दावानल-सा सुलगता दिखाई देता और अनेकों अनुभव होते। एक बार वे बिलोड़े पधारे। उनके पहुँचने की खबर मिलते ही वहाँ के लोगों ने बन्दोबस्त किया—"जो भीखणजी को १ रोटी देगा उसे ११ सामायिक दण्ड की आवेगी।" एक दिन किसी के घर गोचरी पधारे तो उस घरकी बाई बोली "यदि मैं आपको रोटी दूँ तो मेरी ननद की, जो स्थानक में बैठी सामायिक कर रही है, सामायिक गल जाय —नष्ट हो जाय। इस तरह जनता में नाना प्रकार के भ्रम फैला कर आचार्य भीखणजी को विचलित करने की चेष्टा की गई। परन्तु इन विघ्न बाधाओंसे वे फौलादी पुरुष क्या घबड़ाते और क्या मार्ग च्युत होते। मेघकी

काली घटायें सूर्यको आच्छादित कर सकती हैं, पर उसकी हस्तीको नहीं मिटा सकतीं। आचार्य रघुनाथजीकी हरकतें भी मरणांतक कष्ट पहुँचा सकती थीं परन्तु आचार्य जैसे वीर पुरुषको डुबानेकी ताकत उनमें क्या होती!

"जो लोग सच्चे धार्मिक हैं, उनके अन्दर एक ऐसी स्थिरता होती है जो संसार विपत्तिसे विचलित नहीं होती। आध्यात्मिक जीवनका सार ही यह है कि आत्मा इतनी महान् है कि भयानकसे भयानक विपत्ति भी उसे डिगा नहीं सकती। जो आत्मवान् हैं वे दुनियाके ऊपर रहते हैं, दुनियाको उन्होंने जीत लिया है। उन पर गोलियाँ बरस रही हों तो भी वे सच बोल सकते हैं, उनकी बोटी-बोटी कटी जाय तो भी प्रतिशोधकी भावना उनके हृदयमें जाग नहीं सकती। उनकी दृष्टि विश्व व्यापिनी होती है। इसके विपरीत सांसारिक आसक्ति या स्वार्थमें रत होना वे मूर्खता और व्यर्थता समझते हैं। बलिदान जो कीमतका विचार नहीं करता, आत्मोत्सर्ग जो बदलेमें कोई चीज नहीं चाहता, वही उनका नित्य जीवन होता है।" आचार्य भीखणजीके सम्बन्धमें ये विचार सम्पूर्ण रूपसे लागू पड़ते हैं।

उन शुरूके दिनोंका थोड़ा सा वर्णन आचार्य भीखणजीने अपने परम शिष्य हेमराजजी स्वामीसे किया था। वह कितना हृदय-द्रावक है, यह पाठक पढ़कर ही अनुभव कर सकेंगे:

'हम लोग जब रघुनाथजीसे अलग हुए तबसे पाँच वर्ष करीब तक तो भी पूरे भी तो खाने को खरा-सूखा आहार भी पूरा नहीं मिलता था। कारण तो यह हुआ था कि कभी १॥) रुपयेकी कीमतकी बकरी (रेजी) मिल जाती तब भरोसा आता कि अब इसकी पछेवड़ी बना लेंगे। मैं करता-'इसकी एक-दो लड़ें, चोलपट्टे बनाने—एक तुम्हारे लिये और एक हमारे लिये।' जो कुछ आहार-पानी मिलता उसे देकर सब साधु अलगमें बैठ जाते। वह आहार ले हमें दो रोटियाँ देते और फिर सब साधु मुँहें बाँधकर साथमें आहार लेते। उनके हाथमें रोटियाँ आतीं। वे कर-कर खूब करते और बने बनाते।"

५

प्रभावशाली -

—संत साधक—

उस समय भट्टारकोंके मठोंमें धर्म का ह्रास होता जा रहा दुर्लभ समाज है। इसीसे हुए, प्रचार और शिथिलता की इस बीच कुछ विचार करते। उनके अंदरमें लालच कोई खास धर्म नहीं होता और जब कर इन स्थानोंमें भट्टारकोंमें इस दरोबे यहां पर कम हुए हैं और विचार इसीकालके इसमें केवल आडम्बर और शिथिलाचार ही काम कर रहे थे। भट्टारकोंका जमाना ऐसा ही था। इस समयके लोगोंके रूप-रंग, दक्षिणात्य और हिन्दुस्तान को देख कर अपने लोगोंने विचार किया "कोई अंध-धर्म से कैसे छूट पावे हैं। जैन समाज और विचारका पूर्ण अभाव है। अधिकांश लोग गतानुगतिक हैं और स्वाध्यायका निर्णय अपने विवेक बुद्धिसे न कर सकनेसे वहीं अपने विचार परम्परासे करते हैं। कुछ जैन रूढ़ि और अन्धश्रद्धाके भूखे बैठे हैं। ऐसे हालतमें धर्म-प्रचारका कोई रास्ता नहीं दिखाई देता और उनके लिए परिश्रम करना केवल समय गमाना है। इस कालमें सच्चे साधुओंके व ब्रह्मचारियों का होना मुश्किल है। अतः धर्म प्रचारसे और ध्यान न देकर आत्मोन्नति में ही लगे रहना चाहिये।" ऐसा विचार कर वे संतोषपूर्वक आत्म—चिन्तनमें लग गये। आत्मचिन्तनसे दृष्टि हुए आत्मचिन्तनसे ही अपने साधन का केन्द्र बन लिया और उस आत्म-साधना में वे कितने उत्तम रहते थे इसका वर्णन कुछ लाइनों अब है। उन्होंने वर्षों के लिए एकान्तर उपवास करना शुरू किया और चौविहार उपवासमें कड़ी धूपमें आतापन लेते। यह तपश्चर्या उनकी दीर्घ काल तक चली। आतापन

—चतुर्विध-संघ—

आचार्य भीखणजीके इस तरह अथक परिश्रम से धीरे-धीरे उनके सिद्धान्तोंका प्रचार होने लगा। साधु, श्रावक और श्राविकाओं की संख्या बढ़ने लगी। पर कई वर्षों तक संघमें साध्वियाँ न हुईं। इस पर किसीने आक्षेप करते हुए कहा— "स्वामीजी! आपके केवल तीन ही तीर्थ हैं—साधु, श्रावक और श्राविका। साध्वियाँ न होनेसे आपका यह तीर्थ रूपी मोदक खांडा— अपूर्ण ही है"। स्वामीजीने उत्तर दिया: "मोदक खांडा भले ही हो पर है वह चौगुनी चीनीका। अतः स्वादमें अनुपम है"। यह उत्तर देकर स्वामीजीने बतला दिया कि मोदक चाहे पूरा हो पर अगर चीनी उसमें न रहे तो वह स्वाद रहित होगा। उसी तरह संघ में साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका चारों ही हों पर सच्चे चारित्रका अभाव हो तो वह संघ नाम मात्रका ही संघ होगा। संघ चतुर्विध न होने पर भी यदि उसमें गुणी, चारित्रवान आत्मायें हैं, तो वह ही वास्तवमें सच्चा संघ है।

इसके थोड़े दिन बाद ही आचार्य भीखणजीके संघमें तीन साध्वियाँ भी हो गईं उनकी प्रव्रज्याकी कथा बड़ी ओज पूर्ण है।

एक ही साथ तीन महिलायें आचार्य महाराज से दीक्षा का अनुनय करने लगीं। जैनसूत्रोंके अनुसार कम से कम तीन साध्वियाँ एक साथ रहनी आवश्यक हैं। आचार्य महाराज ने विचार किया यदि प्रव्रज्या लेनेके पश्चात इनमेंसे यदि एकका भी किसी कारणसे वियोग हुआ तो एक कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो जायेगी। उस अवस्था में बाकी दो साध्वियोंके लिये संरक्षणा करनेके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जायेगा। अतः इस आगेकी बातको सोच समझ कर ही कार्य करना चाहिये।" यह विचार कर उन्होंने सारी बात दीक्षार्थी बहनोंके सम्मुख रख दी और दीक्षा लेनेके पूर्व इस बात पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर लेनेको कहा। तीनों ही बहनों ने इस बात पर विचार कर जवाब दिया— "अगर हममें से किसीका भी वियोग हुआ तो शेष सहिष्णुता का शरीर विसर्जन करनेके लिये प्रस्तुत हैं।" आचार्य महाराजको

उनके ध्यान पर तो पहले से ही विजय था। अब उनकी दृढ़ता की भी जाँच कर ली। आपसे पीतोचित उत्तर पाकर महाराज प्रसन्न हुए। सेना सजने लगी। इन सरदारोंके नाम थे गुलाबसिंह, नदुर्ख और रणजुझार थे।

इस तरह अपने संघमें बगावतके आसार भी कम न पाने देते हुए और सिंधिया सरकारके खिलाफ़ डट करते हुए अपने भैयाजी निकम्मा जगन्नाथ और पन्त विंचूके साथ अपने मनोरथ सफल करने जा रहे थे। माता दौलतबाईके सौभाग्यवती पुत्र एक बेहद गिरते से हुए पुरखोंका परिचय देते हुए दिन-ब-दिन दौड़ धूप कर रहे थे। सन्धि-वार्ताओंकी सरदा खुद थे, इसलिये उनका डर भी ज्यादा था। वे तो केवल यह चाहते थे कि सन्धि-पत्रों पर दस्तखत हो जाने के बाद वे सीधे पैरोंके हों अर्थात् शत्रु, दोस्त, सरदार और सामन्त लोगों के अलावा उदारता उनके से सामने उदारता का सवाल नहीं था [illegible]

उन्हें विश्राम करनेकी जरूरत नहीं हुई। उनका उपयोग बड़ा तीव्र था। उनकी चाल वृद्धावस्थामें भी तेज थी। वे बड़ा परिश्रम किया करते थे यहाँ तक कि रोज स्वयं गोचरी पधारा करते और शिष्योंको लिख-लिखा कर स्वयं 'आवश्यक सूत्र' का अर्थ बताया करते। उस समय तक वे धार्मिक चर्चामें विशेष रस लेते थे।

श्रावण सुदी १५ के बाद से स्वामीजीको साधारण दमकी शिकायत रहने लगी। दवा-सेवन से कोई लाभ नहीं हुआ। पर्युषण पर्व के दिन आए। बीमारी की हालतमें भी वे सबेरे बजे सवेरे, मध्याह्न और सायंकाल धार्मिक उपदेश और व्याख्यान दिया करते रहे। [illegible] बीमारी कोई [illegible]

१२—तब एक दूसरे अक्षर में चलना इस परमए मर्यादा—सीमित्रो द्वारा निश्चित। अगे जो स्थित हैं, उन्हें बराबर पकड़ रखना।

१३—कोई साधु देवसेवन कर झूठ बोले और प्रायश्चित न करे तो उसे गलते दूर-महित्व कर देना।" *

* स्मर्नीके दशरेख दशरेख, को सिवरक बन्धुओं का कहना है कि नवर-स्वतन्त्र का यह बँटना है। स्मर्नीके दशरेख वेष में से नं० २ ३ और ९ के ही उद्धरण का उस पर टिप्पणी करते हुए 'अेम्बल नवुवक' के [illegible] में अेडनबरा विद्वानों ने इसे मानिक पत्रके ९ में वर्षके ८ में [illegible]

[illegible]

। मेरे हृदय में आनन्द है। तुम्हारेसे बहुतसे तुमसे अच्छे रहे हैं। मैं अपने कुटुम्ब और देशके हितमें अपेक्षा रखकर मरी जा रही हूँ। अपनेको मैं बहुत तुच्छ समझती हूँ तथा अपनेको सदा प्रसन्न रखनेमें ही हित किया है। मैंने सब और सब के अनुसार अपने डाले रखी हैं। अब मेरे मनमें कोई बात नहीं रही।" यह कहकर सत्यवतीने सिर तकिया लिया। थोड़ी देरमें मेरा यह कहना है कि

अपनेको पूर्ण करनेका हो तो यह पूर्णता नहीं है।" सत्यवतीके ये वचन मेरे पीछे थे। उसने सम्राटको, अपने होने वाले पतिको देखनेमें अपने दिन नहीं किए थे। उसके मनमानेमें कोई दुःख नहीं था। कि उसके दुःखोंको प्रकट करनेमें कोई हित नहीं है। सम्राटने उसका किसी एक बहुत बड़ा अपराध किया है। सत्यवतीने यह भी सोचा कि यह किसी देवताका ही दोष है, इस लिये मन दुःख है। इसी दुःखी के प्रति देवताने विमुख हो है, कि यह कैसी सम्राज्ञी है जिसने सम्राटके साथ पैदल ही और जिसने देखा यह एक ऐसा सिंह था कि सम्राटने इसका उसके लिये निमन्त्रण दिया है। सत्यवतीके मुख में चिन्ता है। उसने अपने अन्तःकरणसे ही देख नहीं किया, उसने इन्द्रियोंसे भी देखा, परन्तु वह सम्राटके ही उसके मुख में देखे अपने अन्तःकरणमें उसने यह है जिसमें कि उसने दर्शन ही किया है। सत्यवतीके मुख में देखकर सम्राटने अपने हृदयमें अपने अपने अन्तर मनोरथ के अनुसार अपने ही अपने अनुसार अपने ही अपने प्रकार देखे होंगे। यह सम्राटने ने यह कहा था सम्राटने ही सम्राटने अपने ही अपने दर्शन सम्राटने ने। यह कि अपने अपने अपने ही अपने अपने ही अपने अपने ही अपने अपने अपने

अमोलक उपदेश दे सके।

इस उपदेशके बाद स्वामीजीने ऋषि रामचन्द्रजी को सम्बोधित कर कहा—"ब्रह्मचारी! तुम बुद्धिमान बालक हो, मोह मत करना।" ऋषिने जवाब दिया: "आप तो अपने मनुष्य जन्मको सार्थक कर रहे हैं, फिर मैं मोह क्यों करने लगा?"

ऋषि भरतलालजी पासमें ही बैठे हुए थे। वे स्वामीजी से बोले: "आपके पास रहनेसे मनमें हमेशा हिम्मत रहती थी। अब विरहके दिन आ रहे हैं। यह सहन करना कितना कठिन है—यह भगवान ही जानते हैं।" स्वामीजी बोले: "तुम निर्मल चित्तसे निर्दोष संयमका पालन कर मनुष्य-भवको सार्थक कर, देव बनोगे।"

—आत्म-निरीक्षण और आत्म-शोधन—

इसके बाद में स्वामीजीने तीन आत्म-आलोचना की तथा जान-अजानमें कोई पाप हुआ हो तो उसके लिये "मिच्छा मि दुक्कडं" किया। चन्द्रभानजी, तिलोकचन्द जी आदि जो गण बाहर हो गये थे, उनके नाम ले-लेकर 'खमा-खमावना' किया। इनका उद्देश यह है कि उन्होंने निर्मल चित्त से तलस्पर्शी आत्म-निरीक्षण कर अपने हृदय द्वारा जीवन शुद्धि की। स्वामीजी की इस आत्म-आलोचना का सार श्रीमद् जयाचार्य ने "निज जरा रक्षण" नामक ग्रंथमें दिया है। इसके पढ़नेसे परम शान्ति और स्वर्गीय आत्मानन्द मिलता है। इस आलोचना के सम्बन्ध में उपरोक्त आचार्य लिखते हैं "ऐसी आलोचना के श्रवण में पड़ने से ही अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न होता है और जो ऐसी आलोचना करता है, उसका तो कहना ही क्या! उसके बड़े भाग्य हैं।"

—अनशन—

यह पौष की बात है। सुदि पक्षमी—'सम्वत्सरी' के दिन स्वामीजी ने पौषधव्रत का प्रत्याख्यान किया। शरीर—पक्षी बड़े अशक्त दीखने लगे, परन्तु

—आजीवन आहार-परित्याग—

[illegible]

[illegible]

[illegible]

"स्वामीजीके इस सन्थारेमें वे भी उनके चरणोंमें आकर झुक गये, जिन्होंने पहले नमस्कार करना तो दूर रहा, कभी उन्हें सद्भावनासे देखा तक न था।"

स्वामीजीने बड़ों-बड़ोंसे बाजी लगा दी। 'सन्थारा' पचक्ख बड़े भारी मनोबल का परिचय दिया। धन्य है स्वामीजी की धीरता! धन्य है उनका निर्मल ध्यान!! धन्य है उनकी शूर वीरता!!! और धन्य है उनकी मेरुके समान दृढ़ता!!!!

झुंड-के-झुंड लोग आकर परम हर्षके साथ स्वामीजीके दर्शन कर 'क्षमा-क्षमापना, करने लगे। लोगोंने नाना प्रकारके पचक्खाण-त्याग किये। किसीने स्वामीजीका 'सन्थारा' पूरा न हो तब तक के लिये कच्चा जल छोड़ा, किसीने ब्रह्मचर्य का नियम लिया, किसीने अग्नि सिलगाने का त्याग किया, किसीने हरी खाने का, किसीने रात्रि भोजनका। इस तरह लोग धर्म-ध्यानकी ओर चित्त देकर स्वामीजीके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ चढ़ाने लगे।

'सन्थारे' के बाद सन्ध्या समय स्वामीजीने 'प्रतिक्रमण' किया और बादमें रात्रिमें ऋषि भारीमालजीसे बोले: "व्याख्यान दो।" एक ओर स्वामीजी का सन्थारा' और दूसरी ओर व्याख्यान देनेकी आज्ञा! ऐसी परिस्थितिमें व्याख्यान देना बहुत बड़े धैर्यको समेटना था। वह कोई सहज बात न थी ऋषि भारीमालजी बोले: "स्वामीनाथ! आपके 'सन्थारे' में हमारे व्याख्यानकी क्या विशेषता?" स्वामीजी बोले: "कोई साध्वी 'सन्थारा' करती है तो उसके पास जाकर धर्मोपदेश किया जाता है, फिर हमारे 'सथारे' में धर्मोपदेश क्यों नहीं देते!' गुरुने शिष्यसे धर्मोपदेश सुनना चाहा और उसके लिये कितना आग्रह दिखाया! जब शरीर-शक्ति क्षीण होने लगती है तो आत्मार्थी पुरुष दूसरोंके सहारेसे अपनेको चेतन रखनेकी चेष्टा करता है। स्वामीजी अपने 'सथारे'में अपने शिष्यसे धर्मोपदेश सुनकर धर्म-ध्यानमें अपनेको लीन कर लेना चाहते थे। विशेष आग्रहके कारण भारीमालजीको व्याख्यान देना पड़ा। स्वामीजी ने उसे बड़े ध्यानसे मनोयोग पूर्वक सुना।

१०	[illegible]	७	१८११, २२, २९, ३६, ४३, ५१, ६०

मारवाड़, मेवाड़, ढूंढाड़ और हाड़ौती ये चार देश ही स्वामीजी के धर्म प्रचार के [illegible] रहे। स्वामीजी एकबार पुर (बीकानेर) भी पधारे थे। इस तरह [illegible] प्रदेश को भी उन्होंने अपने चरण-कमलों से पवित्र किया। [illegible] प्रदेशमें [illegible] स्वामीजी के समय में नहीं हुआ था। कच्छ देशमें धर्म-प्रचार का [illegible] टीकम डोसी के द्वारा हुआ था, जिसने स्वामीजी के दो बार दर्शन [illegible] थे।

—स्वामीजी की कृतियाँ—

[illegible] जैन [illegible] और [illegible] की जनता के [illegible] के लिए स्वामीजीने [illegible] अनेक महत्वपूर्ण रचनाएँ की हैं। [illegible] जैन [illegible] के [illegible] में [illegible] है [illegible] —[illegible] [illegible] आगम- [illegible] के [illegible] [illegible] का परिचय [illegible]

[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	१६०
[illegible]	[illegible]	६१
[illegible]	[illegible]	३३
[illegible]	[illegible]	१६६

लाते हैं जिन्होंने स्वामीजी के संदेश को एक कोने से दूसरे कोने तक पहुंचाया। एक बहुमुखी तपस्वी, एक विद्वान् योगी, एक वैरागी तपस्वी, एक ज्ञानी मुनि और पुरातनी स्वामीजी के रूप में उनके दर्शन होते हैं।

चतुर्थ आचार्य पूज्यवर आचार्य के अति विनम्र रहे। उनके निर्माण का श्रेय भी आप ही को था। श्रीमद् जयाचार्य ने "हेम नवलो" में आपके जीवन चरित्र पर एक सुन्दर प्रकाश डाला, अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट की है। आपने कितने साधु संतों को पण्डित किया, कितनी दीक्षाएं दीं और कितने लोगों को धर्म का प्रकाश किया—आदि बातों को जब सोचें तो वास्तव में आप को स्वर्गीय के नाम का आचार्यपद कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं। श्रीमद् जयाचार्य कहते हैं:

"उदय छे दन दीत में हो, हेम सरीखा सन्त ।
बीजे आरे निम विरल होवे हो, साध महा गुणवन्त ॥"

आपका स्वर्गवास सम्वत् १९०४ के वर्ष में जेठ सुदी २ के दिन सिरियारी में हुआ। आपने संयम जीवन में ४१ वर्ष तक विहार किया।

[१६] मुनि उदयचन्दजी : आप जाति के चण्डोल थे और केलवा के निवासी थे। आप बड़े ही तपस्वी सन्त निकले। आपकी दीक्षा पाली में १८५५ की साल में स्वामीजी के हाथ से हुई थी। आपने बड़े ही उमंगके साथ संयम तप किया। दिन-दिन बढ़ते वैराग्य से छठे ४० बोले तक चढ़ गए। छठ-छठ आदि और भी अनेक तप आपने किये। आपने ८११ अन्तिम किये। आप आचार्य भारमलजी के कार्यकाल में सं० १८६० में संथारा कर बेलावास में स्वर्ग सिधारे।

[१७] मुनि रायचन्दजी : आपकी दीक्षा सं० १८५७ में रावलिया ग्राम में हुई थी। आप जाति के ब्राह्मण थे। आपके पिताजी का नाम खारोजी एवं माता का नाम दीपां जी था। आपने दीक्षा ली उस समय आपकी आयु लगभग ११ वर्ष की थी। आपका जन्म-स्थान हरसोलाव के पास निवास ग्राम था। आपके साथ आपकी माता सुन्दर

[२९] सती पुरालजी: आपका गाँव रामगिरी था। आप मालु गोत्रवालजी की बहन और स्वर्गीय रत्नचन्दजी की माता थीं।

[३०] सती कस्तूरजी: आप हरदेवजी की बहिन थीं। आपने भी पति और पुत्र छोड़कर दीक्षा ली। आपने १८७७ की साल में उज्जैन में संथारा किया।

[३१] सती हेतांजी: आपने मालवा में दीक्षा ली। आप बड़ी ही वैराग्यवान सती थीं। आपने पति को छोड़ कर दीक्षा ली थी।

[३२] सती नौरांजी: आपका गाँव शिरोलारो था। आप ने भी पति छोड़ दीक्षा ली। आपने १८७२ साल में संथारा कर जन्म सार्थक किया।

उपरोक्त पाँचों सतियों ने अर्थात हसुजी, पुरालजी, कस्तूरांजी, हेतांजी और नौरांजी—सबने अपने अपने पति छोड़ एक साथ दीक्षा ली थी। पाँचों ही वैराग्यवान थीं।

[३३] सती पुरालजी: आपने १८७७ में संथारा किया और मार्गशीर्ष कार्तिक मास में परलोकवास किया।

[३४] सती नानांजी: आप एक धनवान घराने की थीं। आपकी प्रकृति निर्मल और सरल थी। आपने उज्जैन में संथारा किया।

[३५] बिनांजी ने ३२ दिन की तपस्या की और अन्तमें आपको का संथारा आया। आप सं० १८८६ में स्वर्गलोक सिधारीं।

[३६] सती गोनांजी: आपकी दीक्षा सं० १८५९ में हुई थी। आप सज्झायजी, भैरूजी और डेडतलजी की संवर होलेने वाली थीं।

(३७) सती उदेरांजी: आपका गाँव देवरा था। आप भी सती थीं।

(३८) सती मांडीजी

(३९) सती गोजांजी

खातीजी के पास कुल ५६ महिलाओं ने दीक्षा ली, जिनमें से ३९ सतियाँ बन गईं और ३९ सतियाँ बन में शुद्ध रीति से रहीं।

भगवान ने कहा है—'[illegible]' स्वामीजी ने भी कहा है 'भगवान [illegible] नहीं।" स्वामीजी ने भगवान को [illegible] गया है। इस भवार्थ [illegible] और अपरिग्रह—ये पाँच महाव्रत [illegible] जीतना और राग-द्वेष—[illegible] और वर्तमान के प्रसंग में [illegible] जरूरी—[illegible] दान में [illegible]

"भगवान का धर्म उनकी आज्ञामें है। आज्ञाके बाहर जो धर्म बतलाते हैं, वे झूठ हैं। उनमें न विवेक है, न शुद्ध बुद्धि। तो वे रहिमें पड़े डूबे जा रहे हैं।

जिनराज का धर्म बड़ा उज्वल है। वह आज्ञासे प्रमाणित है।

साधु अपने मन में सोचा करे 'भगवान की आज्ञा से प्रमाणित धर्म ही मेरा धर्म है। आज्ञा रहित कर्तव्य करना तो दूर रहा उसे अच्छा कहना भी मुझे शोभा नहीं देता'।

मैं कह-कह कर कितना कह सकता हूँ? आज्ञा के बाहर जरा भी धर्म नहीं। जो आज्ञा के बाहर धर्म कहते हैं उनकी श्रद्धा धूलकी तरह निस्सार है।

स्वामीजी ने जिन-धर्मको उज्वल धर्म कहकर उसे कितना उच्च स्थान दिया है। जिन आज्ञा को ही जैनधर्म के कर्मठों ने बतलाया है। जिन-धर्म की आत्मा यही है स्वामीजी के जीवनको सबसे बड़ी देन थी। जिन-आज्ञा रहित कार्य के [illegible] अधम समझते थे

केई जिण आज्ञा बारे धर्म कहे
जिण आज्ञा माहे कहे पाप हो स्वा०
ते दोनूं बंध बूडा छे बापड़ा
बूडा थका अज्ञानें विलाप हो स्वा०

[illegible]

[illegible]

बाह्य क्रिया बहु साचवे रूडी परे
जिन आज्ञा विना धर्म न होय स०
जिन आज्ञा होमां ने जिन आज्ञा बारे
धर्म नहीं जिन आज्ञा न होय स० ४
मां जिन वदारे जन्मे डूबे नहीं
जन्म ते बांध्यो न होय स०

"केवली भाख्यो धर्म मंगलीक छै
ओहिज उत्तम जाणरे—
शरणो पिण ल्यो इण धर्म रो
तिणमें श्री जिन-आज्ञा प्रमाण रे।"

"केवली भगवान का कहा हुआ धर्म ही मंगल है। यही उत्तम है। इसी धर्म की शरण लो। जैनधर्म जिन-आज्ञासे प्रमाणित है।'

स्वामीजी के जीवन की विरासत इस अनुभव वाणी में संचित है। यही उनके जीवनकी अमोलक देन है।

* *
*

: २ :

एक अमाप्य महापुरुष

समुद्र अगाध होता है परन्तु एक महापुरुष उससे भी अगाध। समुद्र के गर्भ का अन्दाजा वैज्ञानिक युगमें किसी समय भी हो सकता है, परन्तु एक महापुरुष के समूचे व्यक्तित्व का माप-तौल असंभव रहा है और रहेगा भी। जैसे हम आकाश को नहीं माप सकते, वैसे ही हम एक महापुरुष के अनन्त व्यक्तित्व की सर्वग्राही अवधारणा नहीं कर सकते। वह अनन्तमुखी प्रतिभावाला एक अद्भुत पुरुष होता है। वह एक ससीम शरीर में असीम व्यक्ति होता है। हम उसके शरीर की सीमा और चौहद्दी बांध सकते हैं, परन्तु उसके महान आत्मा की नहीं। जैसे सागर में सागर नहीं समाता, वैसे ही वह शब्दों में नहीं समाता, प्रायः बाहर ही रह जाता है। वह अमाप्य पुरुष होता है। उसके लिए 'अगाधगंभीर' शब्द की 'उपमा' ही ठीक बैठती है।

जब हम स्वामीजी के व्यक्तित्व पर विचार करते हैं, तो वह हमें एक ऐसा ही असीम और पुरुष दिखाई देता है। स्वामीजी की परिभाषा देना, उनकी व्याख्या करना—नपे तुले शब्दों में उनके व्यक्तित्व को माप-जोखकर सामने रखना एक हिमालय को बांधने जैसा दुष्कर काम है। श्रीमद् जगद्गुरु जैसे विद्वान आचार्य, उच्च कोटि के कवि और अपनी प्रतिभा से एक अपूर्व प्रभावशाली जीवनी देकर भी जब अनुभव करते हैं कि बहुत कह गया— बहुत थोड़ा ही है कहने को, तब कौन दावा करेगा कि वह सब कह सकता।

निश्चय ही, स्वामीजी अपने समय के महापुरुष थे और एक अमर्यादित महापुरुष। जो चैतन्य का नाम हो—वह पुरुष। जिसमें चैतन्य का विराट दर्शन हो वह महापुरुष। स्वामीजी—चैतन्य के—निर्मल ज्ञान और दर्शन के—एक ऐसा

दिन विहार करते समय भिक्षा ग्रहण कर लेते हैं। यह प्रत्यक्ष निन्द्य है।
गोचरी—भिक्षा के नियमों को इस तरह भंग करने में आखिर क्या रहता है?
बसतादिक के घर में गर्म जल भी रोज-रोज लेते हैं। जिस पाटे—पुखरे में पहले दिन एक दो लिपटे गोचरी कर आते हैं दूसरे दिन उसी संघ के अन्य लिपटे उस पाटे में गोचरी करते हैं। एक ही टोले के साधु-साध्वियों का इस तरह गोचरी करना प्रत्यक्ष निंद्य निन्द्य है और अनाचार है। अनाचारी को साधु कैसे माना जाय!

—औद्देशिक स्थानक—

कई वेषधारी साधु, साधुओं के निमित्त बनाए हुए स्थानकों में उतरते हैं। ऐसा करने वाले भगवान की आज्ञा करते हैं। भगवान ने कहा है कि साधु घर घर न बनावें और न दूसरों से बनवावे स्थूल और सूक्ष्म, हलते-चलते और स्थिर जीवों की हिंसा होने से संयमी मुनि को घर बनवाने की क्रिया छोड़ देनी चाहिए—ऐसा भगवान ने (उत्तराध्ययन सू० अ० ३५ गा० ८,९ में) कहा है। भगवान की ऐसी आज्ञा होने पर भी ये जैन साधु मठधीशों की तरह औद्देशिक स्थानकों में रहते हैं और तुर्रा यह है कि अपने को सच्चा अहिंसाव्रत धारी साधु कहने में जरा भी संकोच नहीं करते। जो साधु औद्देशिक स्थानक में रहता है वह अहिंसा महाव्रत से पतित होता है। भगवती सूत्र में उसे दया रहित कहा गया है। वह मरकर अनन्त जन्म मरण करता है।१

अपने निमित्त बनाए गए स्थानक या उपाश्रय में रह कर भी जो साधु यह कहता है कि उसे सर्व सावद्य कार्यों का त्याग है, वह दूसरे महाव्रत से गिरता है। ऐसा कहना कि यह मेरे लिए नहीं बनाया गया, कपट पूर्ण झूठ के सिवा और कुछ नहीं।२

१—सा० आ० २।१ ; २—सा० आ० २।२ ;

—विहार दोष—

संघ में और साधुओं के होने पर भी तथा बिना किसी कारण के केवल दो ही साध्वियों का साथ रहना प्रत्यक्ष दोष है। केवल दो ही साध्वियों का साथ रहना व्यवहार सूत्र के पाँचवें उद्देशक में वर्जित है।

बिना कारण अकेले साध्वी का गोचरी जाना अथवा शौचादि के लिए जाना प्रभु-आज्ञा के विरोध है। तथा साधु को अकेले रहना बृहत् कल्प, उद्देश ५ में वर्जित हैं। इसी तरह की और भी बहुत सी बातें कही हैं।

—चश्मा लगाना—

कांच रखना शास्त्रों में मना है। परन्तु आज के साधु चश्मा रखने लगे हैं और उनमें घोर ही दोष समझते हैं। जो ऐसा समझते हैं, उन्होंने पाँचवें परिषह विजय व्रत को भंग कर दिया है। ये जिन-भगवान की आज्ञा के चोर—उसे लोप करने वाले हैं।१

—निमन्त्रित ग्रहण—

गृहस्थ घर से आकर कहीं के लिये साधु को बुला कर ले जाय और इस तरह साधु आकर यहां ले तो उसमें चारित्र किस तरह कहा जाय?२

अपने लिये किया हुआ लेना अथवा बुलाने आने पर आकर लेना—ये दोनों ही भारी दोष हैं। वीर भगवान के अनुयायी इन-दोनों ही दोषों से बचते हैं। जो इन दोषों का सेवन करता है, वह सदाचारी साधु नहीं।३

—सचित्त ग्रहण—

भोजन में वनस्पति और भींगे हुए धान के कण रहते हैं। ऐसे सचित्त भोजन को ग्रहण करने में जो संकोच नहीं करते, वे परभव से नहीं डरते। उन्हें साधु कैसे कहा जाय?४

ऐसे अज्ञ, पानी भोगने वाले, सुख के अनुसार चोर की श्रेणी में आते हैं।५

१—सू० आ० ६।१३; २—सू० आ० ६।१५; ३—सू० आ० ६।१६
४—सू० आ० ६।१७; ५—सू० आ० ६।१

— उपधि संरक्षण —

गृहस्थ की अपनी उपधि—वस्त्रादि सौंपना यह साधु का आचार नहीं है। ऐसा करने वाले साधु जिन-प्रवचन का पालन नहीं करते और मुक्ति-मार्ग से भिन्न मार्ग के पथिक हुए हैं।१

जो गृहस्थ से अपनी वस्तुओं की देखभाल करवा कर उसे सेवक बनाता है उसे साधु कैसे माना जाय? ऐसा साधु अपने समस्त व्रतों को चकनाचूर करता है और सच्चे साधु-भाव से दूर होता है।२ जो अपनी वस्तुओं की सार सम्हाल का भार गृहस्थ को दे जाते हैं वे भगवान के वचनों को कुचलते हैं।३

गृहस्थ सौंपी हुई वस्तुओं को उपयोग करने पर एक जगह से दूसरी जगह रखता है। इस तरह गृहस्थ से जो हिंसा होती है उसका भागी वह साधु भी होता है। गृहस्थ से वस्त्र उठवाने वाले साधु को निर्ग्रंथ धर्म के बारहवें व्रत में कौनसी चरित्र की रेखा कह है ४

जो अपने उपधि के एक वस्त्र के लिये भी कैसा प्रयोजन रखता है उसे निर्ग्रंथ धर्म के पक्के उपासक ने अनुचित कहा है। गृहस्थ के पास धुले हुए उपधि वस्त्रों को [illegible] गृहस्थ से गृहस्थ के पास उपधि रख [illegible]

[illegible]

(२) अनुलग्न बन्ध—बँधे हुए हाथों के [illegible]

दोनों मणिबन्धों को [illegible]

(३) प्रसेवन बन्ध—बन्धे हुए हाथों के [illegible]

यह बन्ध दो प्रकार से होता है या दोनों से। बन्ध [illegible]

अवस्था में नहीं करना, तब तक होने से उस दुःख का नहीं होते।

में करने तक बन्ध केवल दस मिनट होता है। बन्ध के [illegible]

[illegible] एक प्रकार होते हैं तो दूसरे का बन्ध माना जाता है और जब [illegible]

[illegible] होते हैं तो एक का बन्ध माना जाता है। और दो एक [illegible]

[illegible] होते हैं तो एक का बन्ध माना जाता है। और दो [illegible]

[illegible] बन्धने करने वाले होंगे। [illegible]

होते।

६—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] करते हैं—

[illegible]

षट्द्रव्य

जैन दर्शन संसार को वास्तविक मानता है। संसार कोई काल्पनिक वस्तु नहीं, पर वास्तव में अपना अस्तित्व रखती है। जैन दर्शन के अनुसार यह लोक षट् द्रव्यात्मक है। इन द्रव्यों के नाम (१) जीवास्तिकाय, (२) धर्मास्तिकाय, (३) अधर्मास्तिकाय, (४) आकाशास्तिकाय, (५) काल और (६) पुद्गलास्तिकाय हैं। स्वामीजी ने इन ६ द्रव्यों का बड़ा ही अद्भुत और हृदयग्राही विवेचन किया है। पाठकों की जानकारी के लिए हम उसका सार यहाँ देते हैं:—

"जीव चेतन पदार्थ है। उसके असंख्यात प्रदेश हैं। इन प्रदेशों में कभी घट-बढ़ नहीं होती। इसी से जीव को द्रव्य कहा है। द्रव्य तीनों काल में शाश्वत होता है। द्रव्य कभी विलय नहीं होता। वह सदा ज्यों-का-त्यों रहता है। वह छेदने पर नहीं छिदता, भेदने पर नहीं भिदता, जलाने पर नहीं जलता, काटने पर नहीं कटता, गलाने पर नहीं गलता, काटने पर नहीं घटता, और पिसने पर नहीं पिसता। जीव असंख्यात प्रदेशों का अखण्ड पिण्ड है और सदा काल ऐसा ही रहता है। जीव कभी अजीव नहीं होता।

"धर्म, अधर्म आकाश काल और पुद्गल ये पाँचों ही अजीव हैं। पहले चारों ही द्रव्य अरूपी हैं। उन में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नहीं हैं। केवल पुद्गल रूपी है और उस में वर्णादि गुण पाए जाते हैं। ये पाँचों ही द्रव्य साथ रहते हैं, परन्तु अपना अस्तित्व नहीं खोते। वे अपने-अपने गुण को लिए हुए रहते हैं—उन्हें कोई एक दूसरे में मिला नहीं सकता। धर्म द्रव्य अस्तिकाय है। अस्ति अर्थात् जो वस्तु सत् हो—अस्तित्व वाली हो। जिन भगवान ने उसे काय इसलिए कहा है कि वह असंख्यात् प्रदेशों पिण्ड है। धर्म और आकाश भी क्रमशः असंख्यात् अनन्त प्रदेशी अखण्ड सत् वस्तु होने से अस्तिकाय हैं। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय लोक प्रमाण पुरुष हैं। आकाशास्तिकाय लोकालोक प्रमाण लम्बी और पुरुषी है। भगवान ने धर्म, अधर्म और आकाश—तीनों ही अस्तिकाय को

है, उसे कोई [illegible] वह आत्म-ज्ञान के स्वभाव से ही तैरता है उसी तरह करने [illegible] एक बन्धन छोड़ स्वर्ग को जाता है और बन्धन में [illegible]"

इसी तरह प्रश्न करने पर [illegible] किस प्रकार हो, स्वामीजी ने एक [illegible] कर भस्म को पानी में डालने से वह डूब जाता है [illegible] कटोरी बना ली जाए और पानी पर [illegible] कटोरी में पैसे को रखने से वह भी कटोरा [illegible] दमन और क्रोधादि के उपशम [illegible] बनाओ। कर्म भार के दूर होने [illegible] और अपने साथ दूसरों का निस्तार करने में भी सफल होगे।

स्वामीजी की बुद्धि कितनी उपजाऊ थी उनके [illegible] और स्वच्छ था—इसका आभास उपरोक्त प्रसंग से मिलेगा [illegible] विषय को उन्होंने कितने सरल ढंग से समझा दिया।

[illegible]

कर्म भोगा है। पुण्य चौरासी कर्म हैं। जो इनको बन्ध करते हैं वे मूढ़ हैं और कर्म धर्म को नहीं पहचानते। पुण्य से जो-जो वस्तु मिलती है उसके त्याग से निर्जरा होती है। जो पुण्य को रुद्ध होकर भोगता है उसके बिना लिए कर्म बंध जाते हैं।"

भौतिक-उन्नति के चरम विकास पर पहुँची हुई दुनिया आज भोगों में मुग्ध होकर किस तरह अपनी तबाही कर रही है यह सब की आँखों के सामने है। ऐश्वर्य के शोषण त्याग और अनासक्ति है, भोग और लिप्सा नहीं—यह बात [illegible]

सकाम अकाम निर्जरा

[illegible]

अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद

[illegible]

[illegible]

[illegible]

(दैवस) व्रत करने के लिए मक्खन दिया। इसमें उसको क्या हुआ!" स्वामीजी ने उत्तर दिया "घर मालिक ने वह जो कहा कि मेरे घर पौरव कीजिए सो उसमें धर्म हुआ।" प्रश्नकर्ताने फिर पूछा —"मक्खन दिया उसमें क्या हुआ!" स्वामीजी बोले: "मक्खन क्या खूराक—खाने के लिए दे दिया! मक्खन परिग्रह है। परिग्रह खानेमें धर्म नहीं है और न खिलाने में धर्म है। मक्खन में सामायिक प्रतिक्रमण करने दिया उसमें धर्म हुआ।"

पौषध और वस्त्र

किसीने कहा "पौषध व्रत में थोड़े वस्त्र रखने वाले को मोक्ष और अधिक वस्त्र रखने वाले को अधिक कष्ट लगता है। यदि ऐसा नहीं तो परिग्रह न रखने वाले को मोक्ष क्यों कहा!" स्वामीजी ने खुलासा करते हुए कहा वस्त्र रखना कोई जरूरी नहीं है। वस्त्र नहीं रखने से पौषव्रत और अच्छा होता है; लेकिन लज्जा के जो परिग्रह—कष्ट होता है वह सहने की शक्ति न होने से वस्त्र रखना कहा है और लिए परिग्रह लिए वस्त्र रखने का कहा है इसलिए परिग्रह करना पड़ता है। यदि वह परिग्रह लिए बिना ही वस्त्र रखने लगता है तो उसके लाभ के बदले हानि होती है और इसलिए उसे प्रतीत कहा है। जैसे किसी को बिना दण्ड पकड़े रहने का कहा है; और वह दण्ड पकड़ता है तो वह दण्ड पकड़े रहता है। यदि वह दण्ड को छोड़ नहीं सकता। दण्ड पकड़े बिना रहा नहीं जाता इसलिए दण्ड पकड़ता है। परन्तु वह दण्ड के लिए या स्वाद लिखने के लिए नहीं पकड़ता, उसका दण्ड लिखे चलने फिरने के लिए ही होता है। इसी तरह वस्त्र रखने के लिए ही वह परिग्रह करता है। बिना परिग्रह के वह वस्त्र रख ही नहीं सकता।

रहा किसको?

किसीने कहा "भगवान कहते हैं कि दोष के परिहार के लिए वस्त्र रखने में दोष नहीं है और बिना परिग्रह के वस्त्र रखने में दोष होता है। स्वामीजी ने उसे समझाने के लिए प्रश्न किया "कोई साधु कपड़ा लेकर रख जाता है तो वह दोष

को नहीं होता, वही सच्चा ज्ञानी है।" स्वामीजी जीवन के प्रतिपल इस समभाव की रक्षा करते थे। उनकी अन्तर-भावना धर्म-ध्यान से ओत-प्रोत रहती और हर समय वे आत्मा के एकान्त हित की बात को सामने रख कर ही कदम उठाते। वे एक आध्यात्मिक योगी थे। आत्म-साधना उनके जीवन का महा योग था। उनके विचारों और सिद्धान्तों में आध्यात्मिकता कूट-कूट कर भरी हुई है। हम उनके कुछ विचार यहाँ उपस्थित करते हैं जिससे कि पाठकों को उनके जीवन की इस विशेषता का अंदाजा हो सके।

मृत्यु और मोह

रोग, वियोग, मृत्यु आदि कष्ट पड़ने पर अज्ञानी लोग रोना-पीटना करने लगते हैं। स्वामीजी ने एक बार कहा था : "ऐसे अवसरों पर रोना-पीटना नहीं चाहिए। अपनी आत्मा को मजबूत बना लेना चाहिए। धैर्य और समभाव से सहन करना चाहिए। सिर पर कर्ज होने से उतारने की इच्छा व समर्थ न होने पर भी जैसे पाने वाला जबरदस्ती आने वाले आ कर लेता है इसी तरह उदित कर्म उदय में आकर फल दिए बिना नहीं रह सकते। जब महाजन कर्ज अदा करना है तो मूर्ख होने लगता है पर चतुर विचार करता है: 'भी चलो अच्छा ही हुआ। कुछ बोझा तो हलका हुआ। इसने तो अंत-पंत देने ही पड़ते। आज ही चुक गए तो क्या नहीं रहा'। इसी तरह से कष्ट के समय सोचना चाहिए— 'यह अब-तब चुक रहा है। अभी नहीं तो कल संचित कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता। अच्छा हुआ जो अभी से उदय में आ गए। कुछ तो अवश्य हल्की हुई।"

स्वामीजी के इन्हीं उच्च आदर्श में उनकी आध्यात्मिकता पूरा पकड़ी है। दीक्षा लिए हुए मनुष्य के लिए कितना सुन्दर आदर्श उपस्थित किया है।

इसी तरह स्वामीजी ने एक बार कहा था: "अब मनुष्य जिसके कुछ लिये अब ही अच्छा-बुरा में कर लेता। यह सुन कर लोगों में इधर-उधर कर कहने लगे : "बेचारे बाबा को अपनी ही अच्छी-बुरी का कुछ ज्ञान होता। इनके लिए होने वाले हैं। अच्छा ही करेंगे।" इस तरह विपरीत का कोई कहने लगे। अभी ने कहा

पी नहीं आता बड़ी अच्छी आदत है। स्वामीजी जीवन के प्रतिदिन इस समभाव की रक्षा करते थे। उनकी यह भावना थी कि ध्यान या भात पात रहती और इस समय में अवस्था के अनुकूल किस की बात का सामना करने पर ही हृदय उद्यत। वे एक आध्यात्मिक पागल थे। अन्तर्मुखता उनके जीवन का महा योग था उनके विचारों और दृष्टान्तों में आत्मोन्मुखता कूट-कूट कर भरी हुई है। हम उनके कुछ विचार यहाँ प्रस्तुत करते हैं जिससे उनका जीवन की इस विशेषता के अनुभव हो सके।

मृत्यु और भय

[illegible] स्वामीजी ने एक बार कहा था [illegible] अपनी आत्मा को मजबूत बना लेना चाहिए [illegible] जब हृदय में अच्छा ख्याल नहीं रह सकते [illegible] बुरा ख्याल करता है तो बड़ी आफत [illegible] हमें हमेशा मृत्यु की आत-पात देने ही पड़ते। आज ही [illegible] इस बात के समय सोचना चाहिए [illegible] दुख के आने से पहले। कुछ तो अच्छा हुआ है।

स्वामीजी के हृदयस्थ आदेश में कितनी आध्यात्मिकता कूट-कूट है। साथ ही इस बात के लिए कितना सुन्दर आदेश आत्मोन्नति करने में है।

इसी तरह स्वामीजी ने एक बार कहा था "मृत्यु मनुष्य जिन्दगी के कुछ दिनों पहले ही अच्छाअच्छे में आ जाता। यह कुछ दिन की तकलीफ का क्या हिसाब होता। इसके दिन देने पड़ते। मनुष्य ही अन्त [illegible] इस तरह जिन्दगी का कीमत समझते हैं जानी ने क्या

कर रहे हैं। परन्तु वास्तव में वे उसके कामभोग—ऐशोआराम की ही चिंता करते हैं। सभी लोग यही सोचते हैं कि यदि लड़का जीता रहता तो २।४ लड़के लड़कियां होते। लड़की को वर मिलता। परन्तु क्या यह भी कोई सोचता है कि इन कामभोगों के सेवन से लड़की का क्या हवाल होता! न कोई यही सोचता है कि मृत लड़के को कामसेवन से क्या गति हुई होगी। संसारी लोगों की सत्य की ओर दृष्टि जानी मुश्किल है। ज्ञानीपुरुष जन्म-मरण का हर्ष शोक नहीं करते। वे केवल परभव की चिंता करते हैं।"

स्वामीजी ने कितना सुन्दर विवेक दिया है। हम मौत देख कर स्वयं विह्वल हो जाते हैं और विधवा को भी उसकी याद दिला-दिला कर उसके जीवन को दुर्वह कर देते हैं। जीवन को धर्मध्यान में लगा देने से यह वियोग-व्यथा कितनी शांत हो सकती है और जीवन-वहन कितना सरल—यह स्वामीजी के उपरोक्त अवतरण से समझना चाहिए।

पांच महाव्रत और उनकी संगति

स्वामीजी कहा करते थे कि हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह इन पांचों पापों के युगपत् त्याग से ही कोई जैन साधु बन सकता है। ऐसा त्याग भी सर्वथा और यावज्जीवक होना चाहिए। जो एक या अधिक पापों का त्याग करता है परन्तु सब का एक साथ नहीं, अथवा त्याग तो सब का करता है परन्तु सम्पूर्ण रूप से—तीन करण तीन योग से नहीं—वह गृहाचारी है—साधु नहीं। सर्व पापों से एक साथ सम्पूर्ण विरति को ही महाव्रत कहते हैं।

स्वामीजी ने अपने इस सिद्धान्त को गुरु-शिष्य के संवाद रूप में बहुत सुन्दर ढंग से समझाया है:

गुरु: "हिंसा, चोरी, झूठ, अब्रह्मचर्य और परिग्रह इन दुष्कर्मों के आचरण से जीव कर्मों को उपार्जन कर चार गति रूप संसार में भ्रमन करता है।

अहिंसा, सत्यता, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांचों महाव्रतों का नि-

बना डालते। जैसे हम भाषा में बोलते हैं वैसे ही वे सहज स्वभावसे कविता में बोल सकते। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जो उनकी सीघ्र कवित्व शक्ति का प्रदर्शन कराते हैं। हम दो एक उदाहरण यहाँ देते हैं।

एक बार आगरिया गाँव में प्रतापजी कोठारीने आश्चर्य कर पूछा : "आप इतनी जोड़ (पद्य-रचना) कैसे करते हैं ?" स्वामीजीके समीप एक छोटी-सी टोकनी रक्खी हुई थी, जिसके ऊपर का कपड़ा उड़ गया। स्वामीजी ने पद बनाया:

"नान्ही-सी या टोकनी
इणरे माँय पड़यो सपेतो रे
यत्न घणा कर राखज्यो
नहीं तर माँय पड़ेली रेतो रे"

पद कह कर स्वामीजी बोले : "हम इसी प्रकार जोड़ें—रचना करते हैं।" स्वामीजी ने क्षण मात्र में कितना उपदेशपूर्ण पद बना दिया।

एक और भी ऐसी ही घटना है, जिससे स्वामीजी की आशु कवित्व शक्ति का परिचय मिलेगा। सिरियारी में मुन्सरी विजयसिंहजी ने स्वामीजी के दर्शन किए। संसार आदि अनादिके सम्बन्ध में प्रश्न करने पर स्वामीजी ने 'मोर-अण्डा, एरण-हथौड़ा बाप बेटा आदि के दृष्टान्त दे बहुत ही सुन्दर ढंगसे उन्हें समझाया। उत्तर सुन मुन्सरीजी बोले : "आपकी बुद्धि बहुत देशों को परोटे (उन पर राज्य करे) ऐसी है।" स्वामीजी ने निम्न लिखित पद जोड़ कर वापिस जवाब दिया:

"बुद्धि बाही सराहिए
जो सेवे जिन-धर्म
बा बुद्धि किण कामरी
जो पड़िया बांधे कर्म"

"उस रजबुद्धि से क्या प्रयोजन जिससे सिर्फ धन्धों का ही बन्ध होता है। वही बुद्धि सराहनीय है, जिससे जिन-धर्म सेवित है।" जैन-धर्मके प्रति अगाध प्रेम और कविता की अनुप्रेक्षा—स्वामीजी की इन दोनों विशेषताओं के दर्शन इस अन्तर पद में एक ही साथ होते हैं। स्वामीजी की बुद्धि की तीक्ष्णता और अनुभूति और अनुध्यान के तो सभी कायल थे।

स्वामीजीने छोटी-छोटी कृतियोंके साथ-साथ बड़ी-बड़ी कृतियाँ भी दी हैं और उन में उनकी कवित्व शक्ति समान ओज है। संगीत पूर्ण ढालों के साथ सुन्दर दोहे और सोरठे चमत्कार सा पैदा करते हैं।

संसार एक द्वन्द्व है। इसमें बड़ी विचित्रता है। ऊपर आकाश है और नीचे पाताल। एक ओर गगन भेदी पर्वत हैं और दूसरी ओर पाताल भेदी समुद्र। ऐसी विशेष विचित्रता मनुष्य के जीवन में भी है। इस विचित्रता और उसके कारण का एक ही गंभीर और तलस्पर्शी वर्णन स्वामीजी ने चन्द सोरठों में किया है। हम इन सोरठों को यहां देते हैं:

एक नर पंडित प्रवीन रे, एक ने आखर ना चहै
एक नर मूर्ख दीन रे, भाग बिना भटकत फिरे
एक रे मणिना भंडार रे, रत्न चतुरदश पूरमी
एक रे नहीं सिलर रे, दीखा सेर पाए
एक रे अनुभव अनेक रे, गहरा विविध प्रकार ना
एक रे नहीं एक रे, वस्त्र बिना नग्ने फिरे
एक नर ऊंचे पूर रे, सौरी पूरी सम्पदा
एक रे नहीं पूर रे, भीख मांगत भटकत फिरे
एक नर दीसे एक रे, देख बिरदे ऊपरे
एक नर हुवे एक रे, आवा गमन फिर करे

कवि ने एक निश्चल सत्य को कितने सुन्दर ढंग से बोधगम्य कर दिया है। फूल और फल का विकसित होना देखा जाता है पर कली कभी विकसित नहीं जाती—यही करुणा है कि जगत् में इतनी विचित्रता है। प्रत्येक सोरठे में एक ओर हर दर्जे की भव्यसंकल्पता और दूसरी ओर हर दर्जे की भव्यहीनता के उदाहरण फैज के मार्च (March) के समर समलनगर से जार उठते और नीचे गिरते दर्शक हर पैर के हलचल का हर्ष उत्तेजित कर देते हैं। कवि की प्रौढ़ कल्पनाशक्ति सुन्दर शब्दों के अलंकारों से विभूषित हो, एक अनूठे वैभव के साथ प्रस्तुत करती है। कवि एक अनोखी भाव तन्मयता में कहता है : "संसार में स्त्रियों की विचित्रता प्रकट देखी जाती है कि वर्ण के विचित्र क्यों नहीं होंगे ! एक स्वर्ण-वर्ण की प्यारी बात और दूसरा रत्न-खरी ; विस्मय बात है: कि क्यों नहीं एक स्वर्ण वर्ण स्त्रि होगा और दूसरा वर्ण कम विचित्र ! एक मनुष्य नरियें में लीन करता है और नर मांस के मद्य का निश्चल का परिचय देता है दूसरा मनुष्य सोने—हजारों का रत्न करने और मनुष्यों को सेव करता है। कि पहले पुरुष के कर्म मुख होता और कर्म नहीं दूसरा मनुष्य मोक्ष के साधन मुनीमें अविचल लाभ करता। [illegible] एक नवीन नाम नई के घर के नाम दर्शन प्रेम में देखने लगते हैं साल भर में स्वर्ण प्रेम [illegible] के [illegible] अनेकों नये भाव में [illegible] कवि [illegible]

[illegible]

ब्रह्मचारी बोली सती, मत कर नारि प्रसङ्ग
एकण छिण्या वेसतां, होवे अतनो भङ्ग
पावक मल्ले तोह ने, जो रहे पावक सङ्ग
त्युं एकण छिण्या वेसतां, न रहे मत त्युं रङ्ग
नारी कर नहीं निरखनो, वा छिन कहो चौथी वाड़
एह मने जे पालसी, त्यां सकल छिनो अवतार
चित्र लिखित जे पूतली, ते पिण जोवणो नांहि
केवल ज्ञानी इम कहे, एहवैधर्मिक मांहि
भीत परेव टट कूंटरे, तिहां रहता हुवे नर नार
तिहां ब्रह्मचारी ने रहेवो नहीं, ए छिन कहो पांचमी वाड़
संजोगी पासे रहे, ब्रह्मचारी दिन रात
ते तणा शब्द सांभल्या, हुवे मत नो मत
छठ्ठी वाड़ में इम कह्यो, सकल मन मति छिनाल
साधो पौषो विलछिनो, ते मती मार अणाल
मन गमता भोग भोगव्या, ते मार छिनां गुण नांहि
वाड़ भांग्या मत से हुवै, रूठे अजश हुवे लोग मांहि
छिन २ मति सरस आहार नें, वरज्यो सातमी वाड़
ते ब्रह्मचारी नित भोगवे, तो मत रो हुवे बिगाड़
पुद्गल सुं पूरण मरुवे, एहवो मरी आहार
ते वस्तु देखवै करि घणो, छिन सुं वधे विकार
खाटो खरो करणो, पौठो भोजन जेह
विरियाने रस नीपजै, ते रसना सुं रस लेह

जेहनी रसना वश नहीं ते आवे तरण आहार
अन भोग आलस हुवे, ओरे अप्रासुक तार
आठमी बाड़ में इम कह्यो, चौथा म करणो आहार
प्रमाण लोग अधिको करे, तो मन दो हुवे विकार
अति आहार भी दुख हुवे, गले का बल जाय
प्रमाद निद्रा आलस हुवे, वले अनेक रोग होय जाय
अति आहार भी दिये कहे, मनोहम्म घटे तेह
मान अपमान करावी, हुवी पूरे मेट
नवमी बाड़ ब्रह्मचर्य की, विभूषा म करणी अङ्ग
विभूषा दीपे काम, यथे मन मो मन
करि विभूषा जे करे, ते संजोगी दोष
ब्रह्मचारी तन न दीपावे, ते कहे मोक्ष देव
नवमी बाड़ कही ब्रह्मचर्य की, दिव दशमी कहु वेद
ते बाड़ देखी दीठी सही, दिल में मूल म चूके कोड
दोड़ आत्मा अनन्त है बाड़ में, बाड़ आत्मा ज्ञान ने वन्त
निरावृं दोड़ विनय देव नहीं, ते कहो चतुर सुजान
बहर दोड़ मैल हुवे नरे, दिल म चूके कोड
अनु अवन दोड़ ब्रह्मचर्य की, तो ब्रह्म म चूके दोड

अब बाड़ के बाद दश प्रकार के यति धर्म कहते हैं—"क्षमा, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तप, संयम, सत्य, शौच, अकिंचन और ब्रह्मचर्य।" इन दश प्रकार के यति धर्म को धारण करने वाले मुनि दश प्रकार के यति धर्म के धारक कहलाते हैं।

इसमें कहते हैं कि जब तक दोष का क्षय नहीं होता है तब तक जिन, जिन प्रकार से दोष उत्पन्न होते हैं उन कारणों का त्याग करना चाहिए। दोष के कारण भी अनेक प्रकार के होते हैं। कई बार अधिक आहार करने से दोष उत्पन्न होते हैं। कई बार आलस्य के कारण भी दोष उत्पन्न होते हैं। इसलिए, ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए नव बाड़ों के विषय में कहते हैं—कहो—अब इसमें विषय का

'कालबाड़ी [illegible] चौपाइ' [illegible] एक बड़ी ही उत्तम काव्य-रचना है। इसे पढ़ने से ऐसा लगता है [illegible] ज्ञान की अद्भुत छटा, इन्हों का अद्भुत [illegible] अद्भुत [illegible] शान्ति पहुँचाते हैं। स्वामीजी का '[illegible]ज्ञान' [illegible] है। इसके कुछ नमूने देखिए —

[illegible] दो को [illegible]

[illegible]

चारित्र [illegible]

[illegible]

ते चारित्रावरणी [illegible]

[illegible]

चारित्र [illegible]

[illegible]

[illegible]

अर्थात्—'दो आदमी एक साथ चारित्र ग्रहण [illegible] होकते हैं। इस प्रकार दोनों के चारित्र का [illegible] गुण में फेर हो सकता है। चारित्र न्यून, मध्यम और [illegible] जीव के चेतन गुण की पर्याय—उसकी अवस्था विशेष है। [illegible] होने से जितना [illegible] गुण प्रकट होता है—चेतन का [illegible] होता है, वही चारित्र है।

"चरित्रवरणे कर्म चरित्र को बिगाड़ता है; जो बिगाड़ता है—वह आत्मा का निर्गुन—उसका चेतन भाव है। कर्म पगुन आत्मा के लिए अन्य के गुन को नहीं देखता। इसको अच्छी तरह पहिचानो।"

ज्ञानोदेव के ये पद कितने चमत्कारिक हैं—यह पाठक स्वयं अनुभव करें। "पगुन आतो कर्म करै नहीं"—यह कितना गूढ़ और सर्व-गौरव-गंभीर है! यह एक आध्यात्मिक कवि की आत्मा ही अच्छी तरह समझ सकती है।

एक और उदाहरण इसी कृति से हम देते हैं :

निज गुन किरे ने पर गुन मर पड़े,
दे पर गुन पुद्गल जान हो। भविजन
पर गुन करिये निज गुन हुवै निर्मलो,
ज्ञान अद्धा घट में आन हो॥ भविजन
अशुद्ध निज गुन किरिये शुद्ध निज गुन हुवै,
दे पर गुन कर दे दूर हो। भविजन
शुद्ध निज गुन किरिये अशुद्ध निज गुन हुवे,
तिन सूं पर गुन लगे पूर हो॥ भविजन
दे मैला निज गुन मोह कर्म बंधे,
तो निज गुना सु पर बेपार हो। भविजन
मोह रहित निज गुन हुवै निर्मला,
तो सूं पगुन दूर पड़ पर हो॥ भविजन
एक कर्म सूं निज गुन मेला हुवे,
तो सू पर न लगे तन हो। भविजन
दे कर्म काटां हुवे निज गुन निर्मल,
सर्व गुन निज दे नन्द हो॥ भविजन

"आठ कर्मों के उदय से अनेक निजगुण रूपी भावों का उदय होता है और उनके क्षय से क्षायक भावों की उत्पत्ति होती है।

"चार कर्मों के क्षय-उपसम से निजगुण रूपी क्षय-उपसम भावों का उदय होता है। मोह कर्म के उपसम से निजगुण रूपी उपसम भाव होता है

"ये चारों ही भाव—उदय, उपसम, क्षायक, क्षयोपसम—परिणामिक हैं; ये जीव के परिणाम हैं। चैतन्य भाव जीव का निजगुण है और ये उसी की पर्याय हैं। ये भाव जीव फिर जाते हैं पर द्रव्य जीव फिरते नहीं। उसका भी न्याय सुनो।

"तत्वों को शुद्ध समझने से जीव सम्यक्त्वी होता है, उल्टा श्रद्धने पर वही जीव मिथ्यात्वी हो जाता है। यही जीव ज्ञानी का अज्ञानी हो जाता है और अज्ञानी का ज्ञानी।

"नारकी और देवता का जीव मनुष्य और तिर्यंच हो जाता है और मनुष्य तिर्यंच का जीव देव हो जाता है। ऐसे ही जीव के अनेक भाव हैं। वह कुछ-का कुछ हो जाता है।

"जीव अनादि और शाश्वत द्रव्य है। उसकी पर्यायें अनन्त हैं। कर्म के संयोग से इन पर्यायों की हानि वृद्धि होती है परन्तु द्रव्य की हानि वृद्धि नहीं होती।

जीव के भाव—पर्यायें फिरती हैं पर द्रव्य नहीं फिरता। इन भावों के अनेक भेद हैं। ये भाव निश्चय ही अशाश्वत हैं विवेक पूर्वक इस बात पर श्रद्धा लाओ।"

"जीव द्रव्यतः शाश्वत है और भावतः अशाश्वत है। ऐसा जिन-भगवान ने भगवती सूत्र के ७ वें शतकके में कहा है। भाव जीव को अशाश्वत इस कारण कहा है कि उसकी पर्याय पलटती रहती है और द्रव्य जीव को शाश्वत इसलिए कहा है कि *जीव कभी अजीव नहीं होता।*"

द्रव्य जीव और भाव जीव का कितना सुन्दर बोध इस ढाल में भरा हुआ है। निजगुणों के निर्मल होने से 'परगुण दूर पलाय हो' कितना सुन्दर बना है। 'ते प्रत्या इण विध हुवे कर्म सूं, पिण द्रव्य को नहीं इण विध हो' इस एक पद

देखा, जो उन्हें सच्चा गुरु समझ वन्दना करता है वह स्थिति को नहीं देखनेवाला मूर्ख और अन्ध पुरुष भवभव में डूबता है।"

स्वामीजी का कुगुरु पर यह दृष्टान्त कितना सुन्दर और मौलिक है। वेश से कोई साधु नहीं होता, गुण से होता है। आजम से ढका हुआ कुआ भी कुआ ही रहेगा। उस पर बैठने वाले की मृत्यु होगी। उसी तरह कुगुरु की संगत करने वाला दुख भरेगा। सद्गति की ओर मोड़ने वाला यह दृष्टान्त कितना उद्बोधक है, यह पाठक स्वयं ही अनुभव करते होंगे।

कुगुरु पर दूसरा दृष्टान्त भड़भूजे का है। जो राजस्थान के भ्रमण-शौक से परिचित हैं, उन्हें यह दृष्टान्त बड़ा ही फबता होगा।

"कुगुरु भड़भूजे के समान हैं और उनकी श्रद्धा भाड़ के समान होती है। कर्मों से भारी हुए जीव धान-फूस के समान हैं जिनको कि कुगुरु खोटी श्रद्धा रूपी भाड़ में झोंका करते हैं।"

'बारह व्रत की चौपई' भी नीतिकाव्य का उत्कृष्ट नमूना है। स्वामीजी ने इस रचना में श्रावक के बारह व्रतों का विवेचन इतने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ किया है कि पढ़ने वाले को आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। इस रचना के दोहे भी बड़े सारगर्भित और अर्थ गौरव पूर्ण हैं। साथ ही गम्भीर स्पष्टीकरण और वैज्ञानिक विश्लेषण शैली के कारण यह रचना इस विषय की रचनाओं में अद्वितीय स्थान प्राप्त करती है।

इस रचना के कुछ दोहे पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दिए जा रहे हैं। पूर्ण व्रत के जानने के दोहे इस प्रकार हैं

[illegible]

तेजो मत भावक तनो, करे अहंतरा त्याग।
मन में समता भोग ने, कोटे भाव वैराग॥
इहलोके जश अति घणो, परलोके सुख पाम।
भाव सहित आराधियो, जन्म-मरण मिट जाय॥
चोरी करे ते मानवी, गया जमारो हार।
निरख तनो मन मोहने, नरको दावे मार॥
मनुष तनो भव पाम ने, ते नर पापे शोल।
दिव रमणी वेगा करे, करे मुक्ति में कोल॥
स्थूल भाने संयमा, सूक्ष्मनी पर नार।
मठो अक्षर भोगे नहीं, निरो संवो पाप॥
वेरक मानव रहणा, भाने मन वैराग।
भेष राखे विद्यालय, पर करी दे स्वप्न॥
पांचमे आलाने पीछर ने पारकर हो मुनी जल।
लिए हुं लिखवर दोवरे, पद राखे हैं कण॥
एकेली पण हैं परिहरी, लिख दी मोना अक्ष।
[illegible] हुवे तो देखजो, तेम करोज क्षम॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

बारम परिग्रहो नवजात रो, ममता करि ग्रह्यो छै ताण।
तिण सू याने परिग्रह कहियो, तिण थी पाप लागै छै आण॥

पाठक देखें कि इन दोहों में एक भी शब्द भरती का या निरर्थक नहीं। दोहों में भी एक सुन्दर सुमधुर तान है। "माठो निजर जावे नहीं तिणरो खेदो पाए," यह पद तो रात-दिन रटने जैसा है। 'झूठा बोला मानवी, नहीं ज्यारी परतीत,' 'चोरी करे ते मानवो गया जमारो हार, 'भोग जाणे विष सारखा, घर नारी दे त्याग,' 'ते परिग्रहणो मूलो जाण' यति मागनो भजणो, नक मेजावे ताण'—आदि केवल सुन्दर उपदेश-पद ही नहीं हैं पर उनमें शांत काव्य का अमी-रस भरा पड़ा है। पढ़ने से ही भावनाएं निर्मल होती हैं और मन वैराग्य की ओर मुड़ कर, संवेग रस में झूलने लगता है। भाव और भाषा दोनों पर कवि का समान अधिकार उसके कलाकार का सुन्दर परिचय देता है।

अणुव्रत और गुणव्रत का सम्बन्ध, इस रचना 'ढाल' में इतने सुन्दर और स्पष्ट रूप से बतलाया गया है कि उन्हें पढ़ा देने का लोभ संवरण नहीं होता'

पाच अणुव्रत जाणनें मोटो बारै पाल।
छोटा नै अणव्रत कह्यो, ए ए अणु दयाल॥
तिण अणु ने मेटवा भणी पहलो गुण व्रत दस।
दिशि मर्यादा माह ने, टाले पाप विसव॥
बीजो अणव्रत मेटवा, दूजो गुण व्रत धार।
द्रव्यादिक स्यागन करे, भोगादिक परिहार॥
ये द्रव्यादिक राखिया, जेहनो अणव्रत जाण।
अर्थ दंड छूटे नहीं, अनर्थ दण्ड पचखाण॥

"पांचों व्रतों को धारण करने से स्थूल हिंसादि पापों से विरति रूप बड़ी दृढ़ बांध दी जाती है फिर भी सूक्ष्म हिंसादि पापों से अविरति रहने से कहीं इसी जाल बेरोक-टोक आता रहता है।

इस अविरति को मिटाने के लिए पहले गुण व्रत का विधान है। इस गुण व्रत में दिशि मर्यादा कर, उसके बाहर सूक्ष्म पापों से विशेष रूप से निवृत्त हुआ जाता है

मर्यादा इस क्षेत्र में जो सूक्ष्म अविरति रह जाती है उसको मिटाने के लिए दूसरा गुणव्रत—उपभोग परिभोग परिमाण—धारण करना होता है। इस गुणव्रत में इच्छादिक का त्याग और भोगादिक का परिहार करना पड़ता है।

मर्यादित क्षेत्र में जो मर्यादित वस्तुओं के सेवन की छूट रख ली जाती है। वह भी अविरति है। इस अविरति को मर्यादित करने के लिए अनर्थ दण्ड त्याग अर्थात् बिना प्रयोजन पाप कर्म करने का त्याग किया जाता है और केवल प्रयोजन के रूप की छूट रह जाती है

अव्रत और गुणव्रतों के पालन संकल्प का इतना हृदयग्राही विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है

अब इस [illegible]

करो कोई करिवर, जीव अनंती वार।
तिन दल हुवा देहिलो, वे जी० तनो आधार॥
९ मत सिंघ काने, उदन करे तिहांन।
मोने लागेरो भवन, हवे दन देवो तुं मोन॥

एक बार में स्वर्गीजी ने मत भग करने के दोष पर विचार किया है। इस बात के बड़े पर वह अपने में रखने योग्य है। हम उन्हें यहां देते हैं:

छोटो मोटो हुंस मत बादरो वो,
पलनो लहे रीत।
वे हुंस मोंघो सिंह हुवा वे,
विहुं मत में होवे फजीत रे॥ म० ॥ *
छोटोहुं ६ मोने छै तिन में,
इवत पड़े छै सन्त।
वे मोटो हुंस मोने छे तिनो
होवे कुल सिरदार रे॥ म० ॥
सिंह मृग केरी ने मौन परिद्यो,
लोने लोने छै काम बोलणे।
लोने लोन बोलने मोने
तिनरो छै मुंहे जलमे रे॥ म० ॥
करक करक हुंस सिंह
लोने मोन करे वखत।
वे मुख छै बाल जीव अहनो
वे पड़ पर हुवत हुं कुं रे॥ म० ॥

---

*मरिग हुंस न मोने सिंघरी
हुंस मोनो हुं पर एतरे रे।
म० टोनो मिले ते बन्द मंहरो

अनंत लक्षानंत कुलनंत विसरो,
कर्म जोगे गयो दूत भांगो।
ते पारब्ध ने लौकिक सुं डरतो,
पाछो दृढ रखो रहे जागी रे॥
मागल होय ने पाप दूरा भगता
टला क्लेशना मर्म दोय।
सुंभ भोग ते पछा आनंद सुं
दम हिज भव पहुंता मोक्ष रे॥
सुंभ भोग ने भागल थि हुवे तो
धर्म सुं हेत पण होवो।
बाल विषो आलोचा परिहंभिना दिन,
थिर में भदभद में होवे कुरानो रे॥

उपरोक्त पदों में स्वर्गीय ने कहा है कि जिन्होंने पदों का अनुवाद किया है, वह पदों का वास्तविक रूप से हिंदी पाठ के साथ तुलना करने पर पता चलता है कि वह दोनों में कम मुश्किल अपने आप से निर्णय पर आने में कठिनाई का, कुछ ऐसा होता है कि जिस व्यक्ति का उद्देश्य होता है और उसके अनुसार उसे कुछ करना है, अपने मुख्य भाव को अच्छा रखता है। उसके लिए वह दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करता है, "मुझे क्या करना चाहिए"—इस प्रश्न का उत्तर देता है।

"उसे को अनुवाद करने के लिए यह कहा है। उसे के अनुवाद करने के लिए कहा है

उसे कुछ भी उसे कहो न कहो उसे कुछ करो
ने उसके ने उसे को न देखे कुछ ने।

जो कुगुरु तणो विनय करे तो किम उतरे भव पार
क्यों सुगुरु-कुगुरु नवि ओलख्या ते गया अमारो हार
कई अज्ञानी इम कहे गुरु ने बार एक होय
मूंडा भला ते गुरु कह्या, क्यों ने नवि छोड़ना कोय
जिण आगम मांहि इम कह्यो, गुरु करणा गुण देख
खोटा गुरु ने नवि सेवणा, क्यांरो कीमत करणो विशेष
खोटो नाणो न सांतरो, एकण बोली मांय
ते मोलां रे हाथे दियो जुरो किम जाय
जिणरी बुद्ध छे निर्मली ते देखे दोना री चाल
कुगुरां ने नावे करे, साध वांदे पग माल

'जिन भगवान ने विनय को धर्म का मूल कहा है'—ऐसा सब कोई कहने पर इसके रहस्य को विरले ही समझते हैं। भगवान के वचनों का रहस्य यह कि जो सद्गुरु का विनय करता है वही मुक्ति की नींव डालता है।

जो असद् गुरु का विनय करता है वह किस तरह इस भव का पार पा सकता ! जो सद्-असद् गुरु को पहचान नहीं करता वह मनुष्य-अवतार को यों ही खोता है। कई अज्ञानी ऐसा कहते हैं कि बाप और गुरु एक समान होते हैं, भला और बुरा क्या जिसे एक बार मुख से गुरु कह दिया उसे नहीं छोड़ना चाहिये।

पर यह बात न्यायोचित नहीं है, क्योंकि जिन आगम में ऐसा कहा है कि गुण वाले गुरु करना चाहिये। कुगुरु की संगत नहीं करनी चाहिये। गुरु-असद् की हेय परिपाटी करनी चाहिये।

खोटा और खरा सिक्का एक तोली में इकट्ठा मूल के रूप में देने से वह उन्हें नहीं ले सकता है। वैसे ही एक वेष में रहने वाले सद्-असद् की परीक्षा इसी से नहीं हो सकती।

आ—आचार-विचार से गिरे हुए—गुरु होते हैं, उन्हें गुरुत्व छिनका देना—दूर कर देना चाहिए।"

'थोरे भूखा मानवीजे स्वमे किम अनो जे कवे'—में कितनी गहरी हृदय-वेदना छिपी हुई है! 'तुम सारे पूजा करो मोहि निज पूजा अवै'—में कितना तीव्र पर मधुर व्यंग है! 'नर्मद गुरुत्व का दावेदारों सुधरा समाज, कवि की अनोखी सूझ गहरे अनुभव और सहानुभूति के साथ हमारे हृदय में बहुत गहरी महान् प्रतिष्ठा का अनोखा रूप उपस्थित करता है। 'नर्मद दोष के हृदय में राम को मानकर इस के दर्शन में धर्म मानने की सिख समाज का स्वेच्छ समाज अवलोकी के प्रबल बुद्धिवादी होने का ज्वलंत उदाहरण है। 'नर्मद को तुलसी का उदात्त मौलिक होने के साथ-साथ व्यापक लोक की विशेषता है। इस विषय की एक दल के कुछ पद हम यहाँ और देते हैं, पढ़ कर देखें—इनमें कितनी गुलुपा लाल, कितना प्रखर रस, भावों की कितनी उदात्त और अनुभव की भी कितनी गहरी पुट है! नर्मदाजी कहते हैं:

गुरु सारे दे पण कोई गुरु भले रे
आचर सरखा से होवे गुरु रे
ते वेदन ना दावे नाना पुरा तणो रे
लोटा आवो से अवे गुरु रे
अक्षरज्ञाने गुरुए रे गुरु करे रे
तेम वेदोए होवे ब्राह्मण रे
कर्म धरमनो सद्‌ गे हित करे रे
सांभळो हुवे ने गुरु नवाय रे
सत्य कर्म हुं वेदज ब्राह्मण हुए रे
वेद ब्राह्मण हुं ने हुं होय रे
लोहा सर्वे ने कनक ने करे रे
सद्‌ गुरु ने हुं एवे गुरु रे

बणा रे भरोसे कोइ रहिज्यो मती रे
मुख सरधा ने चलणत मींड अंय रे
लोक भाषा में पिण इण विध कहे रे
घी खाधो पिण सुलझा न गयो काय रे
कूडा भरिया जल में आखो गम रे
सगल्ल छे चन्द्रमा प्रतिबद्ध रे
मूरख जाणे गिरलेऊ चन्द्रमा रे
ते तो [illegible] रे
प्रतिबिंब ने जो कोइ मा चन्द्रमा रे
ते तो कहीज निकल समान रे
त्यो गुण विण सरध साधु मय न रे
ते लूला मिथ्याती रे आखंत रे
सिद्धन्त भणायो अनन्ता जीवन रे
अनन्ता आगे भणीयो विचन रे
गुरु ने चेलो हुवो सर्व कोवनी रे
साधी सरधा बिण न मिटी भ्रान रे
गधा में आन्यो चन्दन बारनो रे
ते भार तणो विणासी जोय रे
त्यु क्रिया में हीण थको सुतर मती रे
सर्वाकित बिण धोयो मूड अयोग रे
करे मण मणांरे करवा जोयजा रे
कले परहंसा माय बताई हेत रे
सूने चित परमारथ कर्यो नहीं रे
ज्यू कीज बिण कर्यो रह गयो खीन रे

[illegible] "[illegible] के पास [illegible]—देख लेना—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible]।

"[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

"[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

"[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [

"कई सूत्र पढ़ते और पढ़ाते हैं पर उनकी दृष्टि कीर्ति, प्रशंसा, मान और बड़ाई की होती है। जैसे बिना बीज हल चलाने से खेत खाली ही रहता है उसी तरह सूने चित्त से सूत्र पढ़ने से जीव परमार्थ नहीं पाता।"

'शुद्ध सरधा से करतें सदा समाध रे,' 'विणां रे मरोसे कोई रहेज्यो मती रे,' 'जो गुण बिन मरधे साधु भेखने रे ते लूंता मिथ्यात्वी पूर अज्ञान रे,' 'साची सरधा विण न मिटी भ्रांत रे,' 'सूने चित परमार्थ पायो नहीं रे ज्यूं बीज बिण खाली रह गयो खेत रे'—कितने गूढ़ अनुभव वाक्य हैं! जैसे उनमें से आध्यात्म रसका झरना कल-कल करता हो। कुलड़ी, चन्द्रमा, गदहे, और बीज के दृष्टान्त वस्तु तत्व को कितनी गंभीरता के साथ स्पष्ट करते हैं। काव्य का संगीत सौ घंटों तक कानोंमें गूंजायमान रहकर अपना चिर प्रभाव छोड़ जाता है। स्वामीजी से सुबोध लोक कवि कोई युगों के बाद होते हैं।

एक जगह क्रोध और अभिमान की निन्दा करते हुए स्वामीजी ने कहा है :

क्रोध यणो बोले अलखावणो रे
उपसम्यो कलहो करिवा खार रे
मिथ्या हो मारग छोड उजर परूपा रे
ते विण दुल पावै इण संसार रे
वर्ष मेघ ले हलका बोले एहवा रे
कहे म्हां तुम कुण छै स्यान मंझार रे
ए औगणिक मेघ तणो मिलणो दुरू रे
बले उपजै तरणी सुं अणगार रे
एहवा अहंकारी साधु भेख में रे
एहो नाकदिक अथवा दीर्घ दंत रे
अनेरा लक्षण साधा अनेकां भणी रे
ओरे अक्षर मान बेमान रे

[illegible]

अर्थात्: जो अपनी कोई हँसी उड़ाता है, उसे बच्चे कहते रहते हैं और गाने-बजाने के कोने के लिए पैसा देते हैं—ऐसे मनुष्य को लोग मूर्ख कहते हैं—मूर्ख दंड है और इस संसार—अपने में कुछ देखते हैं।

'जो अपने को ऐसे कोने में बैठे बच्चे कहते हैं कि हमारी दाद लेने का अधिकार कौन है? इस ओछेपन का मूल किसे कहते हैं इस दोनों अवसर हैं।

'जो दूसरे इस मनुष्य को बिना मान—अपमान समझते हैं—जो मान-मोह को ऐसे आदमी हैं उन्हें ये बच्चे कहने को कहते हैं।

'जो मनुष्य अपने को ही अधिकार करते हैं वे मूर्ख को दोष कुछ कम में ही, पर कुछ रहते हैं और इस अवसर-अवसर पर मनुष्य में अनुभव करते हैं।

'मूर्ख—अहंकार, स्वार्थ, लोभ, मोह—इन्हें सब अवसरों पर प्राप्त कर चुका। मनुष्य दोष का कोई, मान लेने के बाद जो भी कोई है, उसका सेवादार होता है।'

और और अभिनय को हम, मन और मनुष्य के भाव को प्रकट करने का लोगों किस तरह और अवसर है; मनुष्य होने तो मनुष्य पर रे—इस होने से [illegible]

तरह के अनेक अमोलक जीवन-सूत्र दिए हैं जो साधुओं के ही नहीं परन्तु आपके जीवन को भी अत्यन्त महान् बना सकते हैं।

स्वामीजी ने एक स्थान पर कुमारी-स्वभाव का चित्रण किया है। स्वामीजी कहते हैं कि 'सती' 'कुमती' में एक 'कु' का अन्तर होता है परन्तु यह अन्तर इतना बड़ा होता है कि 'सती' 'शीलगुण' की खान होती है और कुमती अवगुण की। सती सेता के सारखी होती है जिसका वर्णन जिनवाणी में आता है और कुमती कर्कशा सारखी जो कुल को कलंकित करती है। इतनी भूमिका बांधने के बाद स्वामी यश कुमती का स्वभाव-चि करते हुए लिखते हैं

नारी कूड़ कपट नी कोथली अवगुण नो भंडार म० च०
कलह करवा ने सांतरी, भेद पखावनहार म० च०
देहली चढ़ती दिन पड़ै, घर आवे दूगर अमान म० च०
घर में बैठो हर करै रात आप समान म० च०
देख बिलाई आदकै, सिंघ ने सामुम जाय म० च०
साप डसीने ते मोवै, इन्दर धनु भिड़काय म० च०
कोयल मोर नली पर बोले मीठा बोल। म० च०
मीना कड़वा कुटल-पी, बांधा कर्म कठोल। म० च०
खिण हेत खिण में रीसे, खिण सुख पाई दुख। म० च०
खिण राचे खिण खीजे खिण दया खिण सूख। म० च०
घर्म काम चहल करै, एसी नार अलाम। म० च०
बन्दर ज्यू नचावे सिव रंक ने, आणैज अवल दुलाम। म० च०
बारी ने कारज कोडड़ी, ए वेदू दुरदल दाख। म० च०
कारज सर करवो करै, बारी करै कीज कर्म। म० च०
बारी ने बस वेकरो, होनू एक सलाम। म० च०
कहत कपन कुलीन नर, निन ज्यू वेदू बस म्हाम। म० च०

---

* अर्थात्। कारण इतना ही बस

[illegible] ॥ ४०
[illegible] ॥ ४० ४
[illegible] ॥ ४०
[illegible] ॥ ४० ४
[illegible] ॥ ४०
[illegible] ॥ ४० ४

लोक कहै ग्रह बारमो लाग्या हणे प्रण । भ०
न्हाखे नरक निगोद में, नारो नव ग्रह आण । भ० च०
इण संसार असार में, तिणमें मोटी गाल । भ०
माणस खोटै मारीजे, गावै टोडर माल । भ० च०

स्वामीजी जिस चीज का वर्णन करने बैठते, उसका चरम से चरम कोटि का सुन्दर वर्णन कर सकते। उनकी बुद्धि सावण-भादों के बादलों की तरह बरसती रहती और नए भाव, नई उपमाएं, नए दृष्टान्त, नई सूक्ति, नये स्वर और नई ताल की बूंदों से श्रोता के हृदय हरे भरे होते रहते। वे अनुपम उपदेश, अनुपम शैली और अनुभव ज्ञान की त्रिवेणी बहा देते। उनकी लेखनी कभी रुकती नहीं थी। उनकी वाचा में कभी शिथिलता नहीं आती थी।

कुलटा के मोहमिक स्वभाव का जो चित्रण स्वामीजी ने किया है, वह मानव स्वभाव के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावनाओं के [illegible] अध्ययन उपस्थित करता [illegible] स्वामीजी के हृदय में नारी जाति के प्रति श्रद्धा की भावना [illegible] ही है। कुलटा नारी के स्वभाव का चित्रण करना [illegible] साथ [illegible] है वह आर्य अबला की असहायता के उदाहरण [illegible] उनका [illegible] सहानुभूतिपूर्ण [illegible] स्वभाव [illegible] नहीं पर समझा जा सकता है। [illegible] और [illegible] कुलटा नारी के [illegible] कुलटा के [illegible] वह-वेशक भाव को ही सुन्दर पाते हैं। वह-वेश कोई [illegible] भाव है, कुलटा नारी दुर्भाग्य वश ही ऐसा करती है। नारी के [illegible] वश-प्रभाव में अपूर्व शब्दों को लाने की कला, छोटे छोटे [illegible] [illegible] की [illegible] और को देखने अनुभवों का सुन्दर चित्रण देख [illegible] [illegible] छन्दों से सुसज्जित हो—किस तरह नारी सृष्टि का [illegible]

है—यह कवि ने थोड़े, परन्तु सुघोट शब्दों में व्यक्त किया है। "पात को पीले भरे, अंग उदासे मूल" कितना सुन्दर और अभिव्यक्तिपूर्ण है। भोर में एक ओर मीठे बोल होती है, दूसरी ओर वृक्ष से पत्ते गिरने की करुणा। वर्डसवर्थ कहते हैं कि कुटिया नारी में भी भोर का यह समय घटता है। वर्डसवर्थ कहते हैं कि नारी दर्शन की तरह है जो पुरुष के लिए सदा स्थिति २ के वाक्यों को रस दिन बदलता रहती है। नारी की दोनिनी को उपमा भी एक अनोखी सूझ है। "झोपड़ी फूटे बरतनों, मूढ़े मर्द से आप" तो वैसले हृदय को व्यक्त करती है। कुटिया नारी को या घर की उपमा, मदिरालय की उपमा, अनोखा की उपमा—सभी में उसके उदास और अकेले मूड का परिचायक है। वर्डसवर्थ की दृष्टि इसी तरह सदा कष्ट का सौन्दर्य-प्रेम, शान्त-सुबोध और शान्तमय है।

वर्डसवर्थ के वर्णन कला है—एक अनुभवी शिल्पी की अनोखी कला है जो हरे-भरे पेड़ पर एक चित्र मधुर रंगों से उतार देती है। वर्डसवर्थ ने कला के क्षेत्र पर इसी तरह के अनेक चित्र सौन्दर्य से उतारे हैं।

वर्डसवर्थ केवल उपासक कवि ही नहीं थे परन्तु कुशल चरित्र-चित्रकार भी थे। उनके चरित्र-चित्रण में सूक्ष्म निरीक्षण के अनुपम उदाहरण हैं। उनकी कला के सूक्ष्म निरीक्षण करने में वर्डसवर्थ उनके दो भेद हैं, जिनमें कि वर्डसवर्थ के पेड़ों का चलते चलते सुन्दरी सुन्दरियों के रूप को वर्णन करने में होती है। इन्हें मनोवैज्ञानिक चित्रण और चरित्र-चित्रण के रूप में देखना हो तो उनके कला के कुछ सुन्दर लेखों के उदाहरण दे देते हैं। सुन्दर लेख उनके लिखे हुए उनके चरित्र के चित्र हैं। चरित्र को उनके सुन्दर रूप में दे देते हैं। वह 'हरे वस्त्र वाली, अकेले में हरि... (illegible) ...' में भी 'सुन्दर हृदय देखे सकते, कभी न हरे दुःख — ...' इस में भी 'सुन्दर देख लिखते हैं'—सुन्दर के रूप को देखने का चित्र

व्याकुल हो गई। 'काम तणे वश कामणी रे लाल, ना गिणे काज अकाज'—काम के वश हुई कामिनी किस तरह कार्य-अकार्य की ओर दृष्टि नहीं रखती, इसका सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। विरह-व्याकुल कपिला अपनी दासी को सेठ सुदर्शन के पास भेजती है और वह छल-प्रपंच कर सेठ को महल में बुला लाती है। इस समय कुलटा कपिला की काली करतूत का चित्रण बड़ा ही रोमांचकारी है। सुदर्शन के मन की स्थिति भी बड़ी ही विचित्र होती है। सुदर्शन की मेरु के समान सुदृढ़ मनोदशा का चित्रण कवि ने बड़े ही सुन्दर रूप में किया है। इस अनहोनी घटना को घटित देख कर 'गात्र पसेवो चल्यो, कम्पण लागी देह'—सुदर्शन के शरीर में पसीना बह चला, शरीर काँपने लगा और 'बिलखो थयो सदा'—बहुत उदास हो गया। वह सोचने लगा 'मैं चरित्र न आज्यों सार तो, लिख्यू अयश कपाल छू पड़ै'—और फिर उसने दृढ़ प्रतिज्ञा धारण की 'तिण वेला मन मां इसो, आ करे अनेक उपाय, जो वश छै म्हारी आत्मा तो न सके कोई चलाय'—कपिला निराश हो गई। वह 'मूढ़े ऊठा विचार्या'—यह 'विचार्या तेहनी वाणी और म्हारी लज्या धर्म होनू गई, कोई न करियो काज'—ऐसा 'वचन छै [illegible]'

उपरोक्त घटना के बाद चम्पा नगरी के महाराजा [illegible] अभया सुदर्शन पर मोहित हो जाती है। कपिला पुनः इस [illegible] सुदर्शन के प्रेम में न फंसने की सलाह देती है। अभया [illegible] न चल सका तेरी, कथा न ऐसे लिखा'—कहकर इसे सुदर्शन [illegible] कपिला कहती है—'अपनी करी करसू—सुलसू है। [illegible] इस सुदर्शन के [illegible] इस तरह इसमें से निकलकर [illegible] है राजा पर चढ़ी हुई [illegible] इतना सुन्दर लिखा है कि [illegible] अब छपा है [illegible]

[illegible] सुदर्शन को [illegible]

अपनी मनोदशा प्रकट कर, सेठ सुदर्शन से मिलने की युक्ति करने का अनुरोध करती है। हठ पर चढ़ी हुई विषान्ध नारी की मनोस्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण करना हो तो अभया की इन बातों को सुनिये। विषान्ध प्रेमिका को पापपुरुष किस रूप में दिखती देता है—इसका सुन्दर वर्णन यहां आया है। कवि की गूढ़ तूलिका का कौशल इस वर्णन में बड़े ही सुन्दर रूप में प्रगट हुआ है।

अभया रानी कहै धाय ने, म्हांरी बात सुनो चित लाय हे माय।
ये बालक स्यूं मोटो करो, तोस्यूं बात न राखूं छिपाय हे माय ॥अभया०॥७
मुझ एक मनोरथ अपनो, बस रयो छै मन मांय हे माय।
ते बात सरतु छै घणी, बिन कह्यां बिना सरै नांय हे माय॥
वसन्त ऋतु खेलण गई, राज सहित बन मझार हे माय।
तिण अवसे चम्पानगरी तणा, आया घणा नर नार हे माय॥
च्यार पुत्र सहित परिवार स्यूं, तिहां आयो सुदर्शन सेठ हे माय।
और सेठ बिना तिण आवियो, ते सुदर्शन रे हेठ हे माय॥
तिणरा अतिबल लोचण भला, जाणक दीसे भाण हे माय।
मुख पूनमचन्द सारखो, तेहनो रूप रसाल हे माय॥
तिणरी काया कंचन सारखी, स्यूं खिलो प्रभात हे माय।
शीतल चन्दन सारखो हेम सरीखो, उज्जलो प्रभात हे माय॥
तिण ने दिठां सोभन हुवै, तेहनो सोम स्वभाव हे माय।
तिण आगे बोल्या थकां, मुख रातो मुख राव हे माय॥
म्हांरो मन लागो छै तेह स्यूं, अवर रह्यो सेठ रे पास हे माय।
एह मनोरथ अपनो, रात दिवस रहो हूं विमास हे माय॥
तिण स्यूं भूख तृषा गई, दिन दिन रहूं छूं उदास हे माय।
म्हांरो मन कोई लगे नहीं, तिण स्यूं कहूं छूं तुमरे पास हे माय॥

* अभया रानी कहे धाय ने।

हूं मोही सुदर्शण सेठ स्यूं, तिण स्यूं लागी म्हारो अंग है माय।
सेठ स्यूं मिल्यूं नहीं त्यां लगे, दिन २ गले छै म्हारो अंग है माय॥
मैं कपिला ने बद २ कह्यो, बद्या करूं सुदर्शण सेठ है माय।
सुख भोगवू नहीं सेठ स्यूं, ए वचन आय म्हारो हेठ है माय॥
ए वचन तो ज्यांही रह्यो, म्हारी वंछा पूरण हाम है माय।
ए मनोरथ पूरां विना, म्हारे हाथ न लागै काम है माय॥
ए बात कहो तुम आगलै, अन्तर न राख्यो कोय है माय।
दिवै सेठ सुदर्शण भणी, बेग मिलावो मोय है माय॥
सौ बातां एक बात छै, ले कहो कठा लग जाय है माय।
लाड पूरो माय माहरो, तो जाणूं साची धाय है माय॥

उपरोक्त अनुरोध के बाद पण्डिता धाय और रानी अभया के बीच जो वार्तालाप होता है, वह बड़ा ही रसप्रद और स्वाभाविक है। पण्डिता की छिछिशिक्षा और अभया का जिद दोनों चरम कोटि को पहुँच जाते हैं। पाठक इसका भी रसास्वादन करें।

पण्डिता धाय—

राणी २ हे समझावे पण्डिता धाय, "सुण बाई चित्त लगाय
एक सिखावण माहरी जो
राणी बोला हे कहै बाई मूढ गँवार, थे राय तणो पटनार
ए बात थाने सुहती नहीं जो
इण कुल में हे बाई थे अरथ्या आण, बाँ में चतुर सुजाण
ए नीच बात किम काढिये जो
इण बातां हे बाई लाजे तुझ तात, बले लाजे तुझ मात
बले पीहर लाजे तुझ तणो जो

एहवी बातां हे बाई लागे मन मोहन, तिम कुल गमों निहल
खांने लागे घणी मोटी मैहणी जी
एक दीहर हे दूजो सासरो जाण, बेहु कुल चन्द समान
दोनूं पख धरै निरमला जी
इण बातां हे बाई लागै कुल ने कलङ्क, लागे निन्दा लग तङ्क
ते मुख २ ने मायो नीचो करै जी
एहवी बातां हे बाई मुगै देश परदेश, कुणमी राय नरेश
निंदा करसे तुम तणी जी
राज माहे हे बाई धरी मोटी मण्ड, होसी जगत में भण्ड
शील बिना एक पलक में जी
शील बिना हे बाई पिट २ करै सहु लोय, अयजश अकीरत होय
नर-नारी मुह मचकोहसी जी
पिता कुंपी हे बाई घणां पुरषां री सास, तिम लगर निसचो रास
पुरष तणी सेवा करो जी
पर पुरष हे बाई जाणो भाई समान, ए सीख हमारी मान
ज्यूं मान बधै घरी जगत् में जी
घणी शोभै हे बाई चन्दमा सुं रात, तिम नारी नी जात
शील थकी शोभै घणी जी
जल बिन नदी हे नहीं शोभै सिणगार, तिम नारी सिणगार
शील बिना शोभै नहीं जी
शील बिना हे बाई लागै कुल ने कलङ्क, ज्यूं राजेसर लङ्क
कुल ने कलङ्क चढावियो जी
शील बिना हे बाई हुवियो अनेक, मैणरेहा ने विशेष
मणरथ राजा मर नरके गयो जी

शील पाळी है सीता हुई कुलवन्ती नार, ते गई अवम सुधार
कुल निरमल किनो आपणो जी
शील पाळो है कमो द्रौपदी रो चीर, तिण पाम्यो निरमल शील
अवम सहायतो आपरो जी
शील बिना है बाई घणा भर नार, गया अमारी हार
पड़िया छै नरक निगोद में जी
शील पाळो है बाई घणा भर नार, गया अमारो सुधार
स्वर्गो अवर मोक्ष छै लोक में जी
शील बिना ह बाई अणोमती नी जाय, उतर गई छै सताब
शील बिना पूछ पलक में जी
इणे शील है बाई पाळी मन बिन हवाय, पाळो मन समझाय
बोळा वचो पर पुरुष नी जी
म्हारी मन वचु है बाई सोभागू छूं तोय, नित्य कुल पाळो जोय
पुरुष परायो परहरो जी"

रानी अभया—

"वचन कहे हो अयशो इलाचन कहोर, अम्हो दुख घर नो
नीच नणी सेवा करीजी
वचन कहे छै अयशस ने जी इम, म्हारी वांछा काम
करो काम कामे रहजी
वचन कहे छै इलाचन कहोर, मनो मनोरथ मेरा
पूरजो रे सोभागेजी
वचन कहे छै इलाचन ने अम नी इम, करी रमण छै अयशस
मनो मनोरथ ने फलिजी

पांच पांडव हो धायजी वचना रे काज, गयो ज्यांरो राज
नगर बैराट सेवा करी जो
वचन चूक्या हो त्यांरी नहीं रही धर्म, तिण रो ओहिज मर्म
तिण स्युं रूपूं छूं म्हांरे वचन ने जी"

पण्डिता धाय :

एहवा वचन हो राणी रा सुण धाय, फेर बोलै भले भाय
"इसड़ी पेठाई बाई मत करो जो
एहवा वचन हो सुण्यां महाराज, तो थासी बड़ो रे अकाज
तुमने मोत घुमोते मारसी जी
और सगलो हे बाई तुम परताप, ते पिण होसी भंग
इण बात में शङ्का को नहीं जी
तिण कारण हे बाई थाने कहूं छूं साय, निज मन स्यो समझाय
सीधी टेक पाछो परहरो जी"

रानी अभया :

"सेठजी ने हो धाय तुम ल्यावो छिनाय, ज्युं नहीं जाणै राय
पछै छानो पिण पैंहचायज्यो जी
छानो आणी हो छानो दीज्यो पहुंचाय, तो किम जाणसी राय
ये चिन्ता करो किम कारणे जी"

पण्डिता धाय :

धाय भाखे "हे बाई छानो रहसी किम बात, राय करसी तुम घात
ए बात छिपाई बाई ना छिपै जी
पर पुरुष हे बाई आणो महल मझार, खावे खुटो बैसण
जिहां जाय तिहां परगट हुवै जी

शील पड़ी है सीता दुरे कुलवन्ती नार, ते गई अनल सुधार
कुल निरमल कियो आपणो जी
शील पड़ी है कथ्यो द्रौपदी रो चीर, तिण पाच्यो निरमल शील
अनन्त सुखाली आपरो जी
शील बिना है बाई अगा नर नार, गया अनारी हार
पड़िया छे बाद निगोद में जी
शील पड़ो है बाई गया नर नार, गया अनारी सुधार
स्वामी अब दीसत छे लोक में जी
शील बिना है बाई अणोमती जी आप तणा गई छे मनाय
शील बिना एक पलक में जी
इणे शील है बाई पाछो मन बिच ध्याय, तेरा मन मनमाय
बाला बना ... इण जी जी
अहनी मत वचु है बाई संभालु छु नेण, बिन ... ...
पुरा ... ...जी"

रानी अभया —

"बचन काढ़े हो वचनी हाकल बहरा ... ...

बचन काढ़े हो ... ...

बचन काढ़े हो ... ...

इसड़े दुष्ट हो ... ...

जिहां जाय तिहां परगट हुवै जी।" पर पुरुष के सत्य लहसुन की तुलना स्वामीजी के संस्कारी दृष्टान्तिक होने का सुन्दर परिचय कराती है।

मनोदशा के ऐसे ही अद्भुत और बारीक चित्र इस काव्य में शुरू से आखिर तक बिखरे हुए हैं। अभया रानी सुदर्शन को वश में न कर सकी, तब क्षोभित हो, उस पर झूठा इल्जाम लगा कर महाराज से उसे दण्डित कराने की चेष्टा करने लगी। महाराज ने सुदर्शन को शूली पर चढ़ाने का हुक्म दिया। यह बात नगर में हाथों-हाथ फैल गई। सुदर्शन जैसे सच्चरित्र व्यक्ति पर व्यभिचार का आरोप किसी को सत्य नहीं लगता था। गांव के लोगों ने मिलकर राजा से पुकार करने का निश्चय किया। 'इस तरह गाढी मन में धार'—उन्होंने राजा के पास जाकर जो अर्ज की, उसकी अन्तःस्थलता देख कर पाठक प्रफुल्लित हुये बिना नहीं रहेंगे।

राजा प्रजा की नहीं सुनता। अधिक सुदर्शन को शूली—स्थान की ओर ले जाने के लिये नगर के मध्य से होकर निकलते हैं। प्रजा में हाहाकार मच जाता है। अपने घरके सामने आने पर सुदर्शन को अपनी स्त्री मनोरमा से मिलने दिया जाता है। दुःखी स्त्री-पुरुष की परस्पर विदाई अत्यन्त मनोहर और धर्म-रस पूर्ण होती है। मनोरमा अभिग्रह लेती है। अभया अपना षड्यन्त्र सफल होते देख, हर्षित होती है। इन सबका बड़ा ही सुन्दर और हृदयग्राही वर्णन कवि ने अपनी इस कृति में किया है। सेठ सुदर्शन को शूली के पास खड़ा कर दिया जाता है। उस समय सुदर्शन की दृढ़ता को ध्यान में रखने से दुःख में पड़े हुए कायर से कायर मनुष्य के हृदय में भी वीर निर्भयता जाग्रत होकर सच्चा पुरुषार्थ जाग उठता है। पाठकों को यह मनो-मुग्धकारी चित्र इस मूल पुस्तक में अवलोकन करने का आग्रह करते हैं।